प्रज्ञा समिति का मुखपत्र

हिन्दी त्रैमासिक

प्रज्ञा-वाणी

अंक-56

अप्रैल-जून, 2025

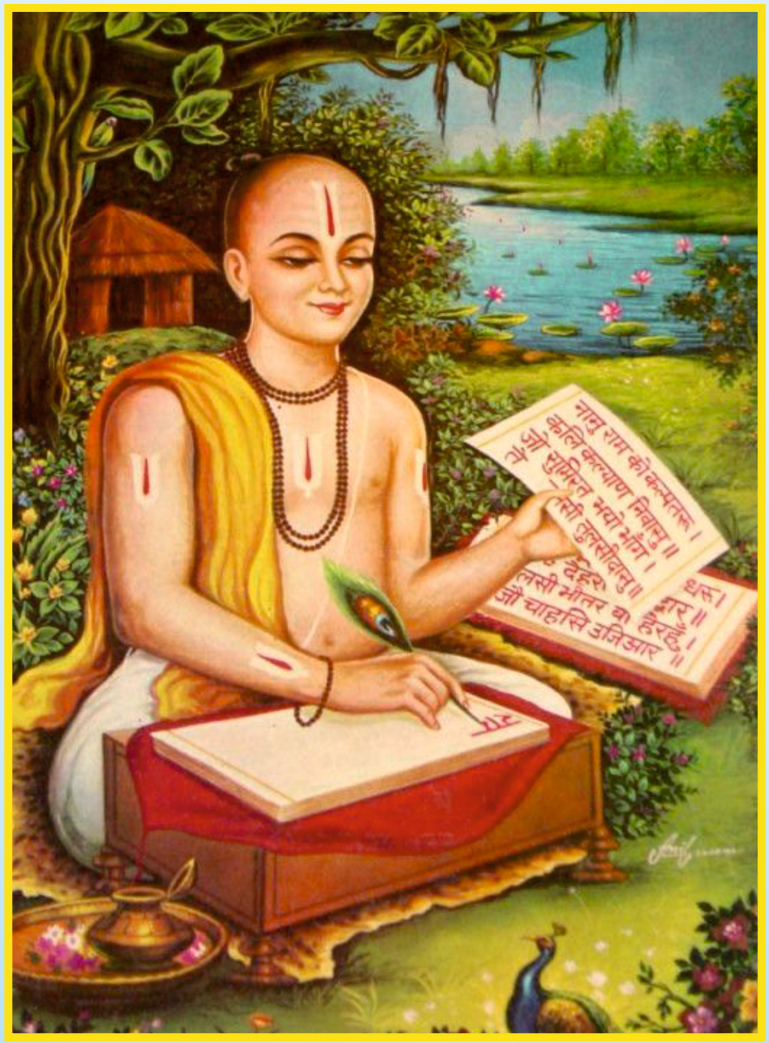

गोस्वामी तुलसीदास

प्रज्ञा समिति का मुखपत्र हिन्दी त्रैमासिक

प्रज्ञा-वाणी

अंक-56 अप्रैल-जून, 2025

विशिष्ट संरक्षक

श्री जे. एन. त्रिवेदी, श्री गिरिजा शंकर तिवारी
श्री शिव शंकर मिश्रा, श्री अनिल कुमार पाण्डेय
श्री विनोद कुमार, डॉ० सुषमा पाण्डेय
डॉ० सुषमा कुमारी

संरक्षक-सदस्य

श्री कमलाकान्त त्रिपाठी, श्री राजनाथ मिश्र
श्री दिनेश्वर मिश्र, श्री आनन्द द्विवेदी
डॉ० एस० बी० पाण्डेय

सम्पादक

डॉ० शिववंश पाण्डेय

सह-सम्पादक

श्री हृषीकेश पाठक

प्रसार-व्यवस्था एवं विज्ञापन

प्रो० (डॉ०) उमाशंकर पाण्डेय
श्री राजनाथ मिश्र

सहयोग

श्री शंभुनाथ पाण्डेय
श्रीमती शकुन्तला अरूण

सम्पादकीय कार्यालय

'लीलाधाम', 3/307, न्यू पाटलिपुत्र कॉलोनी,
पटना - 800 013
दूरभाष : 0612-2263083, मो० : 9430253666

अपील

प्रज्ञा-समिति द्वारा प्रज्ञ-परिवार के विवाह योग्य लड़के-लड़कियों के विवरण प्रकाशित किये जाते रहे हैं। इससे प्रज्ञ-परिवार के लड़के एवं लड़कियों के विवाह में काफी सहुलियत होती रही है। प्रज्ञ-बन्धुओं का सुझाव है कि पत्रिका के प्रत्येक अंक में विवाह योग्य लड़के-लड़कियों के विवरण प्रकाशित किए जायें। तद्नुसार पत्रिका में ऐसे विवरण प्रकाशित करने का निर्णय हुआ है।

अनुरोध है कि इस सामाजिक कार्य में सहयोग करने के उद्देश्य से आप अपने या अपने परिचित प्रज्ञ-परिवारों के विवाह योग्य लड़के-लड़कियों के विवरण निम्न सूचना के साथ प्रधान सम्पादक डॉ० शिववंश पाण्डेय, या महासचिव जनक कुमार पाण्डेय के पते पर भेजने की कृपा करें।

1. लड़का या लड़की का नाम
2. पिता का नाम और पता
3. उम्र (जन्मतिथि एवं समय)
4. वर्ण (रंग) 5. गोत्र 6. ऊँचाई 7. शिक्षा
8. यदि नियोजित हैं तो पदनाम और कार्यालय का पता
9. अन्य आवश्यक विवरण जो देना चाहें।

नोट : प्रकाशित सूची में अगर किसी लड़के या लड़की की शादी हो जाय तो इसकी जानकारी हमें दे दें ताकि अगले अंक में उनका नाम सूची से हटा दिया जाय।

डॉ० शिववंश पाण्डेय
प्रधान सम्पादक
'लीलाधाम', 3/307, न्यू पाटलिपुत्र कॉलोनी
पटना - 800 013
दूरभाष : 2263083, मो० : 9430253666
(सम्पादक का पद अवैतनिक है)

श्री जनक कुमार पाण्डेय
महासचिव, प्रज्ञा-समिति
66, एस.बी.आई. कॉलोनी
दीघा, पटना - 800 011
मो० : 9431201931

सम्पादकीय

प्रज्ञा समिति प्रज्ञ जनों की एक ऐसी समिति है जो भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उत्थान के लिए पिछले 5 दशकों से भी ज्यादा समय से प्रयत्नशील है। इसका गठन आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व बिहार के सुसंस्कृत महापुरुषों के सम्मिलित विचार से उद्‌भूत विचारों को आधार बनाकर किया गया था। यह वह काल था जब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बिहार में जातीय उन्माद का जहर फैल रहा था एवं प्रज्ञ समाज इसका शिकार हो रहा था। अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के निवारण के लिए बिहार के प्रबुद्ध प्रज्ञ जनों ने इसकी स्थापना का बीज रोपण किया था। हमें याद है कि उस समय प्रज्ञा समाज में इस समिति की स्थापना का शानदार स्वागत किया गया था और इसके संस्थापकों को समाज में अति आदर का स्थान प्राप्त हुआ था।

समय के साथ-साथ कोई लिखित साक्ष्य मेरी जानकारी में उपलब्ध नहीं है जिससे हम समिति की स्थापना, उद्देश्य आदि का लिखित साक्ष्य प्रस्तुत कर सकें। बस इतना याद है की पटना के राजकीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय के प्रांगण में महाकवि केदारनाथ मिश्र प्रभात, विद्यवत वर आचार्य देवेंद्र नाथ शर्मा आदि विद्वान इसके अग्रगण्य नेताओं में परिगण्य हुए थे। उस समय जातीय संस्था के रूप में इसके प्रति इसके विरोधी संस्थाओं द्वारा दुष्प्रचार किया जाता रहा और इसके सिद्धांतों और उद्देश्यों का दुष्प्रचार और उपहास होता रहा परंतु प्रज्ञा समाज के महान नेताओं ने इसकी परवाह नहीं करते हुए स्वच्छंद रूप से अपने सिद्धांतों का प्रचार करना शुरू कर दिया था और अंततः 1971 में इसे कानूनी वैधता प्राप्त हो गई। इसका बिहार सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1960 के तहत 1971 में निबंधन हुआ। इस संस्था की पवित्रता और उद्देश्य कमनियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि 60-65 की कालावधि में ही विप्र समाज द्वारा अपने समाज के उत्थान के लिए अग्रगामी संस्था के रूप में इसे स्वीकार कर लिया गया था। इसका एक उदाहरण इस बात को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त होगा। मुझे याद है कि हम सरकारी नौकर थे और सरकारी सेवा में रहे लोगों के लिए प्रज्ञा समिति से किसी तरह का संबंध होना सरकार विरोधी कार्य माना जाता था परंतु, वे लोग सरकार की कुदृष्टि के बावजूद इस संस्था से जुड़ते गए थे। भागलपुर के निवासी और पटना उच्च न्यायालय के एडवोकेट महेंद्र प्रसाद पांडे ने बहुत गौरव के साथ मुझे कहा था कि मैं प्रज्ञा समिति का महासचिव हूं। उन पर यह बंधेज लागू नहीं होता था कि वह सरकारी नौकर हैं इसलिए अगर वे प्रज्ञा समिति के सदस्य होंगे तो उन पर सरकार की कुदृष्टि नहीं पड़ेगी। इस तरह सरकारी सेवा (पुलिस) में रहते हुए भी महाकवि केदारनाथ मिश्र प्रभात जैसे निर्भीक प्रज्ञ अनुयायीयों ने प्रज्ञा समिति के सिद्धांतों का निर्भीक भाव से अनुगमन करना शुरू किया। अर्थात् ,उन्होंने प्रज्ञा समाज के उत्थान के लिए प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न रूप से सहयोग करना शुरू कर दिया। प्रज्ञा समिति के सिद्धांतों की ऐसी लहर बही कि बिहार की इस संस्था का विस्तार अन्य राज्यों में भी तेजी से होते गए। मैंने देखा था की उत्तर प्रदेश के नर्मदेश्वर त्रिपाठी, प्रमोद नारायण तिवारी प्रज्ञा समिति द्वारा जितेंद्र तिवारी के अनुपम होटल, कदम कुआं पटना में आयोजित अधिवेशन में प्रज्ञा समिति के सिद्धांतों व इसके प्रचार के लिए जोरदार वकालत की थी।

प्रज्ञा समिति की कहानी यद्यपि बहुत लंबी नहीं है तथापि उसके मसीहा के रूप में जो कुछ थोड़े लोग उभरे उन लोगों ने जी जान से इसके विकास में अपना कंधा लगा दिया। ऐसे कुछ स्मरणीय नाम हैं - पंडित अंगद ओझा, डॉक्टर जगदीश पांडे, डॉक्टर देवेंद्र मिश्रा, ब्रह्मेश्वर नाथ पांडे,मुक्ति नाथ तिवारी, जनक कुमार पांडे, राजनाथ मिश्रा आदि आदि।

प्रज्ञा समाज और इसके सिद्धांतों के प्रति लोगों में ऐसी आस्था बढ़ी की प्रज्ञा समिति के कार्यों के लिए लोगों ने प्रज्ञा समिति को घर मकान तक दान कर दिया था। छपरा में एक ऐसा उदाहरण है जहां की एक प्रज्ञा परिवार ने वसीयतनामा कर प्रज्ञा समिति के नाम अपना पूरा घर ही कर दिया लेकिन बाद के कुछ स्वार्थी प्रज्ञ महापुरुषों ने स्वार्थ साधन पर उसकी बली चढ़ा दी। वह मकान आज भी है और कानूनी दृष्टि से उस पर प्रज्ञा समिति का अधिकार है। कहने का तात्पर्य यह है की प्रज्ञा समिति एवं इसके सिद्धांत के प्रति लोगों में विश्वास बढ़ता गया। में शिवबंश पांडे 10 - 12 वर्षों से इसके अध्यक्ष के रूप में कार्य देखता रहा हूं और इतना कह सकता हूं की धीरे-धीरे समाज मैं स्वार्थांध की प्रवृत्ति रहने के साथ-साथ उसके प्रति आदर और विश्वास का भाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। आवश्यकता है केवल उस बढ़ते ज्वार को अपने आवश्यकता अनुरूप मोड़ने की।

राजनीति ने अन्य क्षेत्र की भांति इस क्षेत्र को भी अपदूषित किया है और लोगों का ध्यान समाज से अधिक व्यक्तिगत स्वार्थ साधन की और बढ़ता जा रहा है। प्रज्ञा समिति के लोग 'वसुधैव कुटुंबकम' के अपने सिद्धांत को भूलते जा रहे हैं और स्वार्थ की आंधी में एक गति से बहते जा रहे हैं। अन्य वर्गों की अपेक्षा आज भी उनके चाल-ढाल-व्यवहार आदि में जनकल्याण की भावना अधिक है लेकिन वह भावना स्वार्थी राजनीति के दमन चक्र में इस तरह पिसती जा रही है कि उसके पवित्र उद्देश्य ही नष्ट होता जा रहा है। आवश्यकता है सावधान होकर राजनीति के इन विषाणुओं से अपने को बचाने की और आगे बढ़कर अपने पवित्र सिद्धांतों के द्वारा समाज के सभी वर्गों को भी परिष्कृत विचार देने की।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया'

डॉ० शिववंश पाण्डेय

ऋग्वेद के भाष्यकार

- जनक कुमार पाण्डेय

स्कन्दस्वामी - ऋग्वेद पर सबसे पहला भाष्य किसने और कब लिखा यह निश्चित नहीं है, परन्तु वर्तमान में उपलब्ध भाष्यों मे सबसे पहला भाष्य स्कन्द स्वामी विचिरित प्राप्त होता है। ऐतिहासिक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि वेदों के अर्थ समझने और समझाने की प्रवृत्ति विशेष रूप से कुमारिल शंकर भटट् के समय से जागरूक हुई। स्कन्द स्वामी का अभिर्भाव काल यही माना जाता है। यह समय वि० सं० 682 अर्थात 624 ई० के आस पास का होना चाहिए क्योंकि ऐसी प्रसिद्धि है कि शतपथ ब्राह्मण के प्रसिद्ध भाष्यकार हरि स्वामी (638ई०) को स्कन्द स्वामी ने अपना ऋग्भाष्य पढाया था -

व्याख्यां कृत्वाआध्यापयन्मां श्रीस्कन्दस्वाम्यस्ति मे गुरू:।

ऋग्वेद भाष्य के प्रथमाष्टक के अन्त से प्राप्त श्लोक से पता चलता है कि स्कन्द स्वामी गुजरात की तत्कालीन राजधानी वल्लभी के रहने वाले थे, तथा इनके पिता का नाम भर्तृध्रुव था-

वलभी विनिवा स्येतामृगर्थागमसंहतिम्

भर्तृध्रुवसुश्चक्रे स्कन्दस्वामी यथास्मृति:।

स्कन्द स्वामी के इस भाष्य का पर्याप्त प्रभाव सायण पर भी पडा है। स्कन्द स्वामी का यह भाष्य सम्पूर्ण ऋग्वेद पर उपलब्ध नही होता। ऐसी मान्यता है कि स्कन्द स्वामी ने अपना भाष्य आधे ऋग्वेद (चार अष्टक) पर ही लिखा था शेष भाग को नारायण एवं उदगीथ ने मिलकर पुरा किया था-

स्कन्दस्वामी नारायण उदगीथ इति क्रमात।

चक्रु: सहैकमृग्भाष्यं पदवाक्यार्थगोचरम् ।।

माधवभट्ट - ऋग्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकारों मे माधवभट्ट के चार भाष्यकार ज्ञात हुए है। इनमें से एक तो सामवेद संहिता के भाष्यकार के रूप मे प्रसिद्ध हैं, शेष तीन ऋग्वेद भाष्यकार के रूप मे परन्तु इन तीनो को ठीक-ठीक पहचान नही हो पाती। एक माधव तो आचार्य सायण ही है, आचार्य सायण ने अपने बडे भाई माधव की प्रेरणा एवं सहयोग से तैयार किये ऋग्भाष्य को माधवीय भाष्य की संज्ञा प्रदान की है। कतिपय विद्वान वेंकट माधव को ही माधव भट्ट मानते है। परन्तु अनेक प्रमाणों उदाहरणों से यह सिद्ध हो गया है कि माधव भट्ट नामक विद्वान महान वेदविद वेंकट माधव से बहुत पहले हुए हैं, जिनकी छाप वेंकट माधव तथा अन्य ऋग्भाष्कारों पर भी पड़ी है। माधव भट्ट कृत ऋग्भाष्य जिसका बहुत थोडा सा अंश उपलब्ध होता है उससे ज्ञात होता है कि उनका वेदार्थ ज्ञान बहुत ही उच्चकोटि का था। जिसका अनुकरण सायणाचार्य तथा वेंकटमाधव ने ही नहीं किया अपितु स्कन्द स्वामी ने भी किया है। इससे सिद्ध होता है कि माधव भट्ट का समय स्कन्द स्वामी (सप्तम शती) से भी सुतरां प्राचीन है। जिसका सुनिश्चित रूप आज भी इतिहासकारों के लिए एक पहेली बनकर रह गया है।

वेंकटमाधव - सीमित शब्दों मे भाष्य लिखने के लिए प्रसिद्ध वेंकटमाधव का समय कतिपय प्रमाणों के आधार पर 1050-1150 ई० के मध्य माना जाता है। इसकी पुष्टि स्कन्द स्वामी कृत ऋग्भाष्य की भूमिका पृ०7 पर प० साम्बशिव शास्त्री ने की है। वेंकटमाधव कृत ऋग्भाष्य संक्षिप्त है। इसमे न व्याकरणात्मक टिप्पणी है और न अन्य कोई टिप्पणी; केवल पदों की व्याख्या पर्यायवाची शब्दों को देकर की गई है। एक विशेषता इसमे विशेष रूप से पायी जाती है वह ब्राह्मण ग्रन्थों से सुन्दर रीति से प्रस्तुत किये गये प्रमाण ।

धनुष्कयज्या - विक्रम की 16 वी शती से पूर्व विधमान रहने वाले धनुष्कयज्या नामक वेद भाष्यकार का उल्लेख प्राय इतिहास ग्रन्थों मे पाया जाता है। इनके द्वारा तीन वेदों के भाष्य किये जाने का संकेत त्रिवेदी भाष्यकार तथा त्र्यीनिष्ट वृद्ध संज्ञाओं से प्राप्त होता है। इससे अधिक नहीं इनके विषय में और नहीं इनके भाष्य के विषय में ज्ञात हो सका है। इतिहास इस संदर्भ में प्राय: मौन ही है ।

आनन्दतीर्थ - चौदहवी सदी के मध्य विद्यमान रहने वाले वैष्णवाचार्य आनन्दतीर्थ ने ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों पर अपना भाष्य लिखा है। यह द्वैतवादी चिन्तन धारा से ओत-प्रोत है साथ ही छन्दोबद्ध भी है। यह भाष्य ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्राय: चालीस सूक्तों पर उपलब्ध होते हैं।

ऋक शाखागतैकोत्तर सहस्त्र सूक्त मध्ये –

कानिचित् चत्वारिंशत् सूक्तानि भगवत्पादै व्याख्यातानि।

(राघवेन्द्र यति) इसे ही मध्वभाष्य भी कहा जाता है, यही माध्व वैष्णव सम्प्रदाय का मूल श्रोत माना जाता है ।

आदि शंकर (संस्कृतः आदिशंकराचार्य) – ये भारत के एक महान दार्शनिक एवं धर्मप्रवर्तक थे। उन्होने अद्वैत वेदान्त को ठोस आधार प्रदान किया। भगवद्गीता, उपनिषदों और वेदांतसूत्रों पर लिखी हुई इनकी टीकाएं बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने सांख्य दर्शन का प्रधानकारणवाद और मीमांसा दर्शन के ज्ञान–कर्मसमुच्चयवाद का खण्डन किया। परम्परा के अनुसार उनका जन्म 788ई० तथा महासमाधि 822ई० में हुई थी। इन्होंने भारतवर्ष में चार कोनों में चार मठों की स्थापना की थी जो अभी तक बहुत प्रसिद्ध और पवित्र माने जाते हैं और जिन पर आसीन संन्यासी 'शंकराचार्य' कहे जाते हैं। वे चारों स्थान ये हैं– (1) ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम, (2) श्रृंगेरी पीठ, (3) द्वारिका शारदा पीठ और (4) पुरी गोवर्धन पीठ। इन्होंने अनेक विधर्मियों को भी अपने धर्म में दीक्षित किया था। ये शंकर के अवतार माने जाते हैं। इन्होंने ब्रह्मसूत्रों की बड़ी ही विशद और रोचक व्याख्या की है।

आदि शंकर शिष्यों के मध्य आदिगुरु शंकराचार्य, राजा रवि वर्मा द्वारा (1904) में चित्रितजन्म शंकर 508–9 ईसा पूर्व या 788 ईसवी सन् (विवादित)। स्थान – कालड़ी, चेर साम्राज्य वर्तमान में केरल, भारत, त्वष्टसार ब्राह्मण मृत्यु 477 ईसा पूर्व या 820 ईसवी सन् (विवादित), लगभग 32 वर्ष की उम्र में। केदारनाथ, पाल साम्राज्य वर्तमान में उत्तराखण्ड, भारतगुरु / शिक्षक आचार्य गोविन्द भगवत्पाद खिताब / सम्मान शिवावतार, आदिगुरु, श्रीमज्जगद्गुरु, धर्मचक्र प्रवर्तक धर्म हिन्दू दर्शन अद्वैत वेदान्त राष्ट्रीयता भारती उनके विचारोपदेश आत्मा और परमात्मा की एकरूपता पर आधारित हैं जिसके अनुसार परमात्मा एक ही समय में सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों में रहता है। स्मार्त संप्रदाय में आदि शंकराचार्य को शिव का अवतार माना जाता है। इन्होंने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषद् पर भाष्य लिखा। वेदों में लिखे ज्ञान को एकमात्र ईश्वर को संबोधित समझा और उसका प्रचार तथा वार्ता पूरे भारतवर्ष में की। उस समय वेदों की समझ के बारे में मतभेद होने पर उत्पन्न चार्वाक, जैन और बौद्ध मतों को शास्त्रार्थों द्वारा खण्डित किया और भारत में चार कोनों पर ज्योति, गोर्वधन, श्रृंगेरी एवं द्वारिका आदि चार मठों की स्थापना की।

कलियुग के प्रथम चरण में विलुप्त तथा विकृत वैदिक ज्ञानविज्ञान को उद्भासित और विशुद्ध कर वैदिक वाड्म्य को दार्शनिक, व्यावहारिक, वैज्ञानिक धरातल पर समृद्ध करने वाले एवं राजर्षि सुधन्वा को सार्वभौम सम्राट ख्यापित करने वाले चतुरामान्य–चतुष्पीठ संस्थापक नित्य तथा नैमित्तिक युग्मावतार श्रीशिवस्वरुप भगवत्पाद शंकराचार्य की अमोघदृष्टि तथा अद्भुत कृति सर्वथा स्तुत्य है। सतयुग की अपेक्षा त्रेता में, त्रेता की अपेक्षा द्वापर में तथा द्वापर की अपेक्षा कलि में मनुष्यों की प्रज्ञाशक्ति तथा प्राणशक्ति एवं धर्म और आध्यात्म का ह्रास सुनिश्चित है। यही कारण है कि कृतयुग में शिवावतार भगवान दक्षिणामूर्ति ने केवल मौन व्याख्यान से शिष्यों के संशयों का निवारण किया। त्रेता में ब्रह्मा, विष्णु और शिव अवतार भगवान दत्तात्रेय ने सूत्रात्मक वाक्यों के द्वारा अनुगतों का उद्धार किया। द्वापर में नारायणावतार भगवान कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने वेदों का विभाग कर महाभारत तथा पुराणादि की एवं ब्रह्मसूत्रों की संरचनाकर एवं शुक लोमहर्षणादि कथाव्यासों को प्रशिक्षितकर धर्म तथा आध्यात्म को उज्जीवित रखा। कलियुग में भगवत्पाद श्रीमद् शंकराचार्य ने भाष्य, प्रकरण तथा स्तोत्रग्रन्थों की संरचना कर, विधर्मियों–पन्थायियों एवं मीमांसकादि से शास्त्रार्थ, परकायप्रवेशकर, नारदकुण्ड से अर्चाविग्रह श्री बदरीनाथ एवं भूगर्भ से अर्चाविग्रह श्रीजगन्नाथ दारुब्रह्म को प्रकटकर तथा प्रस्थापित कर, सुधन्वा सार्वभौम को राजसिंहासन समर्पित कर एवं चतुरामान्य – चतुष्पीठों की स्थापना कर अहर्निश अथक परिश्रम के द्वारा धर्म और आध्यात्म को उज्जीवित तथा प्रतिष्ठित किया।

मनु एवं पराशर स्मृतियों में समाज में वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप

डॉ० मुकेश कुमार ओझा
संस्कृत विभागाध्यक्ष
फिरोज गाँधी महाविद्यालय, करबिगहिया, पटना

वर्ण शब्द का शाब्दिक अर्थ रंग है। लेकिन यहाँ इसका अर्थ वर्ग से है। समाजशास्त्रियों के अनुसार वर्ण का अर्थ व्यावसायिक वर्ग से है। ऋग्वेद में भी वर्ण का प्रयोग रंग या आलोक अर्थ में प्राप्त होता है। यास्काचार्य ने निरूक्त में वर्ण शब्द का प्रादुर्भाव 'वृ' धातृ से बताया है, जिसका अर्थ होता है चुनना या वरण करना। वर्ण व्यवस्था मनुष्य के समाज में अधिकारों, कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्वों एवं समाज तथा वर्ग के संबंधों को व्यवस्थित करती है। इससे मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है। वह परिवार, समाज और प्रदेश के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का पालन करते हुए सत्य, अहिंसा, पवित्रता आदि गुणों से परिपूर्ण रहता है। समाज, समुदाय एवं देश के निर्माण में वर्ण व्यवस्था का योगदान महत्वपूर्ण है।

वर्ण व्यवस्था के संबंध में विद्वानों एवं इतिहासकारों के बीच एक मत नहीं रहा है। पाश्चात्य विद्वानों में गैरेट प्राचीनतम भारत में परम्परागत वर्ण व्यवस्था स्वीकार नहीं करता, लेकिन बेबर इस युग में वर्ण व्यवस्था स्वीकार करते हैं। नेसफील्स के अनुसार कर्म के बल और कर्म की नींव पर भारतीय वर्णों की व्यवस्था हुई है। प्राचीन काल में कर्म के बल द्वारा जाति बंधन तोड़कर व्यासदेव महर्षि बने, विश्वामित्र कहलाये और सूत जी ने धर्मोपदेश किया, अत: कर्म के द्वारा उच्च वर्ण नीच और नीच वर्ण उच्च वर्ण प्राप्त कर लेते थे।

प्राचीन संस्कृति में वर्ण व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक संगठन की रूप-रेखा वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित थी। प्रत्येक संस्कार वर्ण भेद पर ही आधारित थे। वर्ण विरोधी बौद्ध एवं जैन धर्म भी इसका त्याग नहीं कर सके। प्राचीन भारतीय संस्कृती में प्रभाव एवं प्रभुता के लिए वर्णों का संघर्ष सामाजिक इतिहास के लिए काफी महत्वपूर्ण है।

वर्ण व्यवस्था सामाजिक विभाजन के रूप में वैदिक काल से आज तक विराजमान है। इस व्यवस्थ के अन्तर्गत समाज में वर्णों का विभागजन किया गया था। आर्यों ने इस विभाजन के अन्तर्गत यह व्यवस्था रखी थी कि कोई भी व्यक्ति कर्म के अनुसार अपना वर्ण परिवर्तन कर सकता है, लेकिन वर्ण व्यवस्था का यह लचीलापन उत्तरवैदिक काल में समाप्त होने लगा था। कालान्तर में भी वर्ण व्यवस्था सभी क्षेत्रों में दिशा-निर्देशन करती रही।

वर्ण व्यवस्था में व्यक्ति के गुण में स्वभाव के अनुसार स्थान मिलता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत कर्म की प्रधानता और कर्त्तव्य की रूप-रेखा तैयार होती है। यह व्यवस्था सामाजिक संरचना से संबद्ध है। वर्ण व्यवस्था से ही समाज में व्यक्ति अपने प्रभाव एवं महत्व की पहचान देता है।

व्यक्ति अपने धर्म के पालन से समस्त संस्कार का विकास करता है एवं कर्त्तव्य के निष्ठापूर्ण पालन में व्यक्तिगत का विकास करता है। वह अपने परिवार एवं समाज का विकास करते हुए सत्य, अहिंसा आदि गुणों का पालन करता है। अत: समाज, समुदाय और देश के निर्माण तथा उत्थान के लिए वर्ण व्यवस्था का योगदान गरिमामय है।

पूर्ण वैदिक काल में आर्य और अनार्य अर्थात् दास दो प्रधान वर्ग के बीच संर्घष का पता चलता है। उत्तदवैदिक काल तक दो के स्थान पर चार वर्णों का उल्लेख होता है। इन चार वर्णो का विकास एक कुशल श्रम और व्यवसाय के आधार पर हुआ। आर्यों ने समाज का संगठन को बनाये रखने के लिए पूरे समाज को चार वर्णों में विभाजित किया- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस व्यवस्था में कर्म एवं व्यवसाय की प्रधानता देते हुए गुणों को आदर किया गया।

वर्ण का विभाजन उस समय के जीवन की आन्तरिक चेतना का परिणाम था। अपने-अपने वर्ण के अनुसार सामाजिक एवं धार्मिक कार्य करना वर्ण धर्म समझा जाता था। इस व्यवस्था का अभिप्राय तत्कालीन समाज में एक दूसरे के विरोध और प्रतिस्पर्धा के बिना अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए मोक्ष की प्राप्ति करना था। व्यक्ति और समाज की दृष्टि से वर्ण व्यवस्था उत्तम थी इस व्यवस्था के द्वारा मनुष्य अपना शारीरिक और मानसिक विकास करता था।

गाँधी जी ने भी वर्ण व्यवस्था को प्राकृतिक नियम ही माना है। उसके अनुसार मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक रूप से समान नहीं है। वर्ण व्यवस्था द्वारा निर्धारित पेशे को अपनाने के बाद मनुष्य अन्य क्षेत्रों में भी ज्ञान की प्राप्ति कर सकता था। धर्मशास्त्रों में वर्णों की उत्पत्ति को दैवी मानी गयी है। इसका प्रमाण ऋग्वेद में मिलता है।

ब्राह्मणौस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृतः।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रौजायत।।

इसके अनुसार वर्णों की उत्पत्ति विराट् पुरूष से हुई है। उसके मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरू (जांघ) से वैश्य तथा पदा (पैर) से शूद्र उत्पन्न हुए। शरीर में जो स्थान मुँह, बाहु, जाँघ और पैर का है वही स्थान समाज रूपी शरीर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का है। ब्राह्मणों का कार्य मुँह से शिक्षा एवं ज्ञान प्रदान करता था। क्षत्रियों का कार्य बाहु बल से देश की सुरक्षा प्रदान करना था। वैश्य आर्थिक व्यवस्था को पूरा करते थे और शूद्र सेवा के द्वारा समाज को गति प्रदान करते थे। ऋषियों और चिन्तकों ने तत्कालीन साहित्य में वर्ण व्यवस्था को धर्म एवं प्रकृति से इसलिए भी जोड़ा कि मनुष्य समाज से अलग होकर स्वतंत्र न होकर समाज के विकास से जुड़ा रहे।

महाभारत में भी वर्ण व्यवस्था के दैविक होने का वर्णन मिलता है। महाभारत में विराट् पुरूष के स्थान पर ब्रह्म का उल्लेख है। मनु ने भी वर्ण व्यवस्था में कर्म की प्रधानता पर बल दिया है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी चार वर्णों की सृष्ठि गुण और कर्म के आधार पर की है।

वर्णों की उत्पत्ति में गुण का सिद्धान्त भी माना गया है। कई गुण होने पर भी मूल रूप से तीन माने गये हैं- सत्व, राज और तक। यह गुण सुख, कर्म और अज्ञान का द्योतक माना गया है। सभी वर्णों के लिए अलग-अलग गुण हैं। ब्राह्मण के सत्व, क्षत्रिय के लिए रजोगुण, वैश्य के लिए रजस और तमस का मिश्रित स्वरूप तथा शूद्रों के लिए तमोगुण। व्यक्तिगत स्वभाव से ही मनुष्य का गुण विकसित होता हे। गुणों की स्थिति सबों में अनिवार्य है क्योंकि समग्र प्रकृति त्रिगुणात्मिका हैं, जिसमें सत्वगुण की प्रधानता होती है। उसमें भी शेष दो गुणों रज और तम की स्थिति रहती है, लेकिन ये दोनों गुण गौण होते हैं। साथ ही स्थिति के समक्ष इनका प्रभाव प्रतिलक्षित नहीं होता। ब्राह्मणों में प्रायः इसी प्रकार की स्थिति देखी जाती है। इसी प्रकार शेष वर्णों के गुणों को भी समझना चाहिए। वर्णो। के कर्म भी गुण से ही प्रेरित होते हैं। ब्राह्मणों के सदकर्म सत्वगुण की प्रधानता का परिणाम है। सत्वगुण की प्रधानता वाले व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृति सात्विक कर्म की ओर होती है। इसी प्रकार रजोगुण की प्रधानता वाले व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृति तामसी कार्यों के प्रति होती है। स्मृतिकारों ने वर्णों के कार्यों का विभाजन उसके गुणीय आधार पर ही किया है।

मनु ने भी कहा है कि सात्विक गुण से युक्त ब्राह्मण धर्म, ज्ञान, तप, शुद्धि एवं आत्म चिंतन में लगे थे। शरीर की विषयों की ओर आकृष्ट करना रजोगुणसमन्वित था। शौर्य, शासन, प्रजा रक्षण आदि क्षत्रियों का प्रधान कर्त्तव्य रहा है। प्रीति से संयुक्त, क्लेशरहित और प्रकाशयुक्त लक्षणों से युक्त आत्मा सत्वगुण सम्पन्न मानी गई है।

सात्विक गुण का लक्षण था- वेदों का अभ्यास, तप, ज्ञान, शौच, इन्द्रिय-संयम, धर्म कार्य और आत्मा का चिंतन। ये समस्त गुण ब्राह्मण के थे। रजोगुण व्यक्ति के लक्षण थे- आरम्भ किये गये कार्य में रूचि न रखना, धैर्य का अभाव, सर्वदा विषयों में आसक्ति। राजसकि गुण के लक्षण क्षत्रियों में रहे हैं। तर्क शून्य को तमोगुण माना गया है। लोभ, निद्रा, अधैर्य, क्रुरता, नास्तिकता, नित्य कर्म का त्याग, मांगने का स्वभाग-तामस गुण के लक्षण कहे गये है।

पराशर स्मृति में भी चार वर्णों का उल्लेख प्राप्त होता है। पराशर के अनुसार नित्य छः कर्मों में निरत देवताओं तथा अतिथियों की पूजा करने वला ब्राह्मण कभी अधोगति को प्राप्त नहीं करता। ब्राह्मणों के षट्कर्मों में सन्ध्या स्नान, जप, होम, देवताओं की पूजा, अतिथि सत्कार तथा वैश्वदेव यज्ञ हैं। क्षत्रियों के कर्त्तव्यों के संबंध में कहा गया है कि शस्त्र को हाथ में धारण करने करनेवाला क्षत्रिय प्रजाओं की रक्षा करता हुआ शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी का धर्मपूर्वक पालन करे। क्षत्रियों के वीरोचित कर्मों के प्रतिपादन में वीरभोग्या वसुन्धरा का सिद्धान्त यही प्रतिपादित है। यह पृथ्वी वीरों के द्वारा ही भोग्य है और वीरता क्षत्रियों का गुण एवं कर्म है। वैश्य की वृत्ति में लोहे का काम, रत्नों का काम, गोपालन, वाणिज्य तथा कृषि कर्म को माना गया है। द्विजों की सेवा करना शूद्रों का परम धर्म माना गया है।

उपर्यक्त पराशर के वर्ण संबंधी कर्त्तव्यों के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि वर्णों के कर्म उनके गुणों से सम्पन्न है। गुणानुसार ही कर्मों में प्रवृत्ति यहाँ भी वर्णित है। पराशर स्मृति में वर्णों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई इसका उल्लेख स्पष्ट रूप में नहीं मिला है, लेकिन चारों वर्णों के कर्त्तव्यों का उल्लेख अवश्य मिलता है। कर्त्तव्यों के आधार पर ही कर्मों की गुणात्मक वृत्तियों का पता चला जाता है, जो अन्य स्मृतिकारों की भी मान्यता रही है। वर्ण-वर्ण विभाजन का प्रारम्भिक स्वरूप ऋग्वेद से ही प्रारम्भ हो जाता है। ऋग्वेद के प्रसिद्ध पुरूष सूक्त में चार वर्णों के बारे में जानकारी मिलती है। इसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार भागों में वर्ण व्यवस्था को विभाजित किया गया है।

ब्राह्मण-मनुस्मृति हिन्दू समाज का मेरूदण्ड माना जाता है। भारतीय संस्कृति में मनुस्मृति के नियमों को श्रद्धा की दृष्ठि से देखा जाता है। इस ग्रंथ के अनुसार ब्राह्मण सभी वर्गों में श्रेष्ठ थे। उनकी महानता का मुख्य कारण था उनका ज्ञान और गुण। ब्राह्मण के लिए यह आवश्यक था कि उसमें भावना हो। इन सब गुणों के कारण ही ब्राह्मण राज्य में पुरोहित, शिक्षक, न्यायाधीश, प्रधानमंत्री, राज्य के शासन निकाय का सदस्य आदि होता था। ब्राह्मण अगर अपने गुण का पालन नहीं करते थे तो उन्हें अपने से हटना पड़ता था। ब्राह्मण भी अन्य जातियों तरह दूसरे व्यवसायों का सहारा लेकर जीविकोपार्जन कर सकता था।

पराशर स्मृति के अनुसार व्रत से रहित अध्ययन से शून्य जहाँ भिक्षा के लिए ब्राह्मण घूमते हों, उस ग्राम को राज दण्ड दें। अन्यथा यह राजा चारों के आश्रय देने वाला माना जाता है। शम, दम, तप, शुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह, ज्ञान-विज्ञान और आस्तिकता यह स्वाभाविक ब्राह्मण का कर्म है।

बौद्ध-युग में वर्णाश्रम धर्म की गति रूक सी गई थी, लेकिन सातवाहन काल में वर्णाश्रम धर्म गति पुनः सबल होने लगी। इस समय मनु और याज्ञवल्क्य ने सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निरीक्षण किया तथा नई व्यवस्थाएँ निर्धारित की। इसमें मनु का अद्वितीय योगदान था। मनु द्वारा संचालित वर्ण व्यवस्था भविष्य के लोगों के लिए एक देन ही नहीं थी, बल्कि सर्वदा के लिए मार्ग प्रदर्शक भी बनी। यह सही है कि मनु द्वारा निर्देशित वर्ण व्यवस्था में ऊँच-नीच की भावना थी, जिसमें बाद में हिन्दू समाज को कमजोर किया, लेकिन यह भी सत्य है कि समृतिकालीन व्यवस्था को दैविक भाग्य के साथ सभी लोगों ने स्वीकारा। मनु और याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मणों के विविध कर्मों की ओर संकेत किया है। ब्राह्मण किसी भी यज्ञादि में भाग लेने के योग्य माना जाता था, लेकिन मनु का यह भी कथन है कि ब्राह्मण बड़ा हो अथवा नही वह जलती हुई अगिन है जो कभी भी अपवित्र नहीं होता है। अतः यज्ञादि में आमंत्रित ब्राह्मणों में गुणों की खोज अत्यंत आवश्यक नहीं थी। महाभारत भी इस विषय में मनु से सहमत है। इससे यह पता चलता है कि ब्राह्मणों की श्रेष्ठता गुणों पर नहीं बल्कि जन्म पर आधारित थी।

स्मृति काल में रचित बौद्ध ग्रंथ वर्णों का उल्लेख करते हुए बाह्मण से उच्च क्षत्रिय को मानता है, जिसका कारण यह है कि बौद्ध धर्म के संस्थापक सिद्धार्थ गौतम जिस कुल में उत्पन्न हुए थें, वह कुल ब्राह्मण वर्ण से हीन नही माना जा सकता था। इसलिए आवश्यक था कि बौद्ध ग्रंथों में क्षत्रियों को ब्राह्मण से श्रेष्ठ बतलाया जाय। भारतीय समाज ने भी इसे स्वीकर नहीं किया है।

जो ब्राह्मण वेद के ज्ञान को प्राप्त अतिथि का सत्कार नहीं करता इस प्रकार अन्नादि से सत्कार नहीं करने के कारण स्वयं भोजन कर लेने पर वह पाप को ही प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मण का मुख अनुपम कण्टक-रहित क्षेत्र है। इसमें सम्पूर्ण बीजों को बोवे। वह कृषि सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाली है।

कौटिल्य ने भी कहा है कि ब्राह्मण को मृत्युदण्ड नहीं दिया जाए, उसने जिस प्रकार का अपराध किया हो, उसकी सूचना देने वाला चिन्ह उसके ललाट पर अंकित कर दिया जाय, जैसे कुत्ते का चिन्ह आदि। मनु का मत है कि ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने से सभी वर्णों में ज्येष्ठ होने और वेद को धारण करने से धर्मानुसार ब्राह्मण ही सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी था। संगम युग से पता चलता है कि ब्राह्मणों की सलाह पर राजा प्रशासनिक कार्य करता था।

बाण के अनुसार असंस्कृत बुद्धिवाला, ब्राह्मण जन्म से ब्राह्मण होने के कारण समाज में प्रतिष्ठित था। ब्राह्मण का स्थान समाज में सबसे उच्च था क्योंकि वे ब्रह्मा के सिर से उत्पन्न हुए थे।

कौटिल्य के अनुसार ब्राह्मण अध्ययन-अध्यापन से समाज का कल्याण करता है। यूनानी लेखकों ने भी ब्राह्मणों की उपयोगिता पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अशोक के शासनकाल

में ब्राह्मण के विशेषाधिकारों को पर्याप्त रूप से क्षति पहुँची। बौद्ध सम्राट के दृष्टिकोण से ब्राह्मण जन्म के आधार पर श्रमण एवं अन्य धर्मानुयायियों का अधिकार नहीं था।

क्षत्रिय-कौटिल्य के अनुसार अध्ययन, दान, शास्त्रजीविका क्षत्रिय के प्रधान कर्म थे। मनु ने कहा है कि रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, विषयों में आसक्त होना क्षत्रियों का मुख्य कर्त्तव्य था। इस वर्षीय ब्राह्मण सौ वर्षीय क्षेत्रीय से श्रेष्ठ था। ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों पिता और पुत्र के समान थे। वाण के अनुसार सूर्य और चन्द्र नामक दो प्रमुख क्षत्रिय वंश के थे। क्षत्रिय राजन्य वर्ग के थे जो पीढ़ियों से शासन करते आ रहे थें।

अलबरूनी के अनुसार क्षत्रिय वेद पढ़ता था। यज्ञ करता था। प्रजा पर शासन करना उसका कर्त्तव्य था। वह पुराणों का आचरण करता था। क्षत्रियों द्वारा लोक रक्षा की बात पराशन ने भी की है। उसे अनुसार क्षत्रिय प्रजा की रक्षा करता था, शस्त्र धारण करता था, भली भाँति दण्ड देता था और दूसरों की सेनाओं को जीतकर धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करता था।

सभी शास्त्रकारों ने वर्ण के कर्म की प्रशंसा का पालन की है और समाज में व्यावहारिकता को ध्यान में रखते हुए परिस्थितियों की प्रतिकूलता पर भी विचार किया गया है। क्षत्रिय को आपद् धर्म के अन्तर्गत वैश्य कर्म अपनाने की सलाह दी गई लेकिन उसे हिंसा प्रधान कृषि कर्म करने का अनुमती नही थी। संकट काल में क्षत्रिय भी अपने से नीचे वर्ण के कर्म अपना सकते थे। व्यक्ति अपने कर्म करने के बाद भी जब अपने परिवार का जीवन यापन नहीं चला सकता था तो वह अपनी जीविका चलाने के लिए दूसरा कार्य करने लगता था।

वैश्य वर्ण-भारतीय व्यवस्था में वैश्य वर्ण का तीसरा स्था प्राप्त है। वैश्य आवश्यकता पड़ने पर आत्म रक्षा, गौ, ब्राह्मण की रक्षा तथा वर्णसंड़ करता को रोकने के लिए शस्त्र ग्रहण कर सकता था। वैश्य देश को समृद्ध करने के लिए व्यापार में संलग्न रहते थे। व्यापारियों का एक समुदाय होता था जिसे सार्थ कहा जाता था।

शूद्र वर्ण-चौथा वर्ण शूद्रों का था, इन्हें निम्नतम समझते हुए भी आर्यों ने अपने सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत इन्हें स्थान दिया था। शूद्र अपने शारीरिक सेवा के द्वारा समाज की आवश्यकताओं को पूरा करते थें। शूद्र वर्ण की अवस्था समाज में दयनीय थी। अपनी जीविका को चलाने के लिए वे उच्च वर्णों पर निर्भर रहते थे। शूद्र अपने स्वामी की सेवा में हमेशा कार्यरत रहते थे। शूद्रों का धन उनके स्वामी का होता था और आपत्तिकाल में वह अपने स्वामी को नहीं छोड़ सकता था।

वेदों में भी चार वर्णों का उल्लेख प्राप्त होते हैं। वहाँ एक पाँचवा वर्ण निषाद की भी चर्चा है। निषाद से युक्त पाँचों वर्णों को पंचजना कहा गया है। सभी पंचजन यज्ञों में भाग लेते थे। निरूवक्तकार यास्क ने भी पंचजन का उल्लेख किया है। असी पंचजन की व्याख्या में वे कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के अतिरिक्त निषाद पाँचवाँ वर्ण है। निषाद को निम्न कार्य करने वाला वधिक तथा पापिष्ठ माना है। कालान्तर में निषाद पृथक वर्ण न होकर शूद्रों में ही परिगणित हो गया। मनु तथा पराशर भी शूद्रों में ही इसकी गणना करते हैं।

वर्णों का कर्त्तव्य-वर्ण की व्यवस्था का प्रारम्भ ऋग्वैदिक समाज में हुआ था, लेकिन इसका वास्तविक स्वरूप स्मृतिकाल में नखरा जो एक व्यवस्था स्थापन का काल था। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त के समान इस युग में चारों वर्णों को ब्रह्मा के चारों अंगों से उत्पन्न माना गया है। मनु स्मृति एवं पराशर स्मृति कालीन वर्णों के कर्त्तव्य इस प्रकार देखे जा सकते हैं-

ब्राह्मण-'ब्रह्म' जानाति इति ब्राह्मण: अर्थात् जो ब्रह्म को जानता है वही ब्राह्मण है। अन्य तीन वर्णों में ब्राह्मण को श्रेष्ठ माना गया है। दूसरे वर्णों की तुलना में ब्राह्मण में ज्ञान और तप अधिक होता है। इसलिए जहाँ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण की हिंसा होती है, दुर्गति उस राष्ट्र का नाश कर देती है। मनुस्मृति में ब्राह्मण के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि वंद पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना, दान देना और आवश्कतानुसार थोड़ा सा दान स्वीकार करना ही ब्राह्मण के कर्त्तव्य हैं। ब्राह्मण को लोभरहित होकर वेदांगों के साथ वेद अध्ययन करने का निर्देश दिया है।

पराशर भी ब्राह्मण के षट्कर्मो। को स्वीकार करते हुए अन्य कर्मों का भी संकेत करते हैं। देवताओं तथा अतिथियों की पूजा करना तथा यज्ञशेष का भक्षण करना ब्राह्मणों के विशेष कर्म में विहित माना है। ब्राह्मणों को समाज के प्रति महत्वपूर्ण कर्त्तव्य थे। वे त्याग, संयम एवं साधन के जीवन बिताते हुए समाज के प्रमुख कार्य, अध्यापन तथा यज्ञ का वहन करते थे। कौटिल्य के मतानुसार ब्राह्मण का स्वधर्म अध्ययन, अध्यापन,

यजन, याजन, दान तथा परिग्रह है। मेगास्थनिज के अनुसार ब्राह्मण अधिक देवप्रिय थे तथा पारलौकिक विषयों में पारंगत थे। वे जनता को पथ प्रदर्शन करते हुए इहलोक और परलोग संबंधी यज्ञ कराते थें। वे समाज की भलाई के लिए दुर्भिक्ष, वर्षा, महामारी आदि विषयों पर भविष्यवाणी करते थें। इन सब कार्यों के लिए ब्राह्मण को अनेक दान और उपहार मिलते थे।

क्षत्रिय-क्षत्रिय शब्द का निर्माण 'क्षत्र'+त्रैड् धातु से हुआ है जिसका अर्थ होता है नष्ट होने से रक्षा करना। मनु के अनुसार प्रजा की रक्षा, दान, यज्ञ करना, वेद इत्यादि पढ़ना और विषयों में न फँसना आदि क्षत्रियों के मुख्य कर्त्तव्य हैं। क्षत्रिय का कर्त्तव्य है कि प्रत्येक आपत्ति से समाज की रक्षा करे। शुक्र नीति में क्षत्रियों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि जो लोक की रक्षा करने में चतुर हो, शूर, आत्मसंयमी, सहनशील, पराक्रमी और दुष्टों को दमन करने में समर्थ हो, वही क्षत्रिय है। आपस्तम्ब धर्म सूत्र के अनुसार अध्यापन, यज्ञ करना, दान ग्रहण करना इन तीन कर्मों को छोड़कर शेष कर्म जो ब्राह्मण के लिए विहित है वह क्षत्रिय के लिए भी है किन्तु उसके दण्ड देना तथा युद्ध करना अधिक कर्म होते हैं। मनु ने ब्राह्मण और क्षत्रिय को क्रमशः पिता और पुत्र माना है। उसके अनुसार दस वर्षीय ब्राह्मण सौ वर्षीय क्षत्रिय से श्रेष्ठ था। क्षत्रिय लोग हस्ति और अश्व संचालन की दिशा में काफी निपुण होते थे। वह सहनशील और क्षमावान भी थे। उनकी श्रेष्ठ जीविका शस्त्र थी।

वैश्य- जो पुरूष न तो ब्राह्मणों की भाँति साहसी, ज्ञान सम्पन्न और न क्षत्रिय की भाँति होते हैं, किन्तु क्रय-विक्रय इत्यादि कार्यों में निपुण होते हैं उन्हें वैश्य कहा जाता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि वैश्य के धर्म विहित कर्म वे ही होते हैं जो क्षत्रिय के केवल वैश्य के लिए दण्ड और युद्ध का कर्म वर्जित होता है। पुनः खेती, पशुपालन तथा व्यापर का कर्म अतिरिक्त भी होता है।

शूद्र-समाज की वर्ण व्यवस्था में शूद्रों का चतुर्थ स्थान है। चारों वर्णों में शूद्र को अधम माना जाता था। शूद्रों को उच्च वर्णों के समान कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। मनु के अनुसार शूद्र कीतदास होता था। उसकी सृष्टि ब्राह्मण की सेवा के लिए ही हुई है। द्विज की सेवा करना उसका वास्तविक धर्म था। उनको वेद मंत्रों के पठन-पाठन का अधिकार भी नहीं था। शूद्र लोग वेदमंत्र का उच्चारण किये बिना ही देवताओं को प्रमाण करते थें। शूद्रों के लिए कुछ भी पाप नहीं है और न ही धर्म में उनका कोई अधिकार है। किसी भी कार्य करने का निषेध नहीं है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनु एवं पराशर स्मृतियों में समाज में वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप गुण पर आधारित था, जो भारतीय सम्यता एवं संस्कृति का परिचायक है। वर्ण व्यवस्था भारत के सभी जातियों को समन्वय स्थापित करने का कार्य करती है। इस वर्ण व्यवस्था में सभी वर्ण एक दूसरे वर्ण का ख्याल रखते थे। इतना ही नहीं एक दूसरे की कमी को मिल-जुलकर दूर भी किया करते थे। आज इन स्मृतियों के आधार पर हमें समन्वय स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद, वैदिक मन्त्र 73
2. देवाज यज्वा, अध्याय 2 पाद-1
3. डॉ० विमल चन्द्र पाण्डेय 1982 पृ० 23
4. जयशंकर मिश्र, प्राचीन 1992 पृ० 8
5. डॉ० श्रीकृष्ण ओझा, 1988 पृ० 153
6. अथर्ववेद संस्कृति प्रकाशन- मथुरा 3.5, 7
7. श्रीमद्भ. गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर- 4.13
8. ओझा-प्रा.भा.का सा. इ.-पृ० 154, 55
9. रविन्द्र कुमार मुखर्जी, दिल्ली- 1970 पृ० 33
10. ऋक् मण्डल 10 सूक्त 12

आज मैं बहुत खुश हूं

डॉ० अमरेन्द्र मिश्र
पूर्व अध्यक्ष, सांख्यिकी विभाग एवं
अध्यक्ष, विज्ञान संकाय, पटना विश्वविद्यालय

विवाह के बाद ससुराल आते ही निशा ने अपने व्यवहार, सास-ससुर की सेवा और देवर, ननद के प्रति अपने प्रेम से सबका मन जीत लिया था।

ससुराल तो साधारण ही थी। खाता-पीता परिवार था। खेती-बारी से परिवार का गुजारा हो जाता था। निशा के पति, अजय, पढ़ने में बहुत तेज थे। एम०ए० का रीजल्ट निकले अभी दो-तीन महीना ही हुआ था। पूरे विश्वविद्यालय में उन्होने प्रथम स्थान पाया था। एक-दो कालेज में उन्होने व्याख्याता के पद के लिए आवेदन भी कर रखा था।

भगवान की दया से पटना के एक प्रतिष्ठित कालेज में उनको तुरन्त ही नौकरी भी मिल गयी। बहुत प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। नौकरी की चिठ्ठी मिलते ही घर में खुशी का वातावरण छा गया। अजय खुशी से उछल उठे। निशा के लिए तो यह खुशी की बात तो थी ही पर उसे सबसे अधिक खुशी इस बात से थी कि अजय खुश थे। खबर मिलते ही अजय के साथी लोग और गांव के कुछ नवजवान लोग अजय को बधाई देने आने लगे। अजय के बाबूजी ने दूसरे दिन गांव के बाहर वाली ठाकुड़बाड़ी पर सुन्दरकांड का पाठ करवाया और आस-पड़ोस सबके घर लड्डू बंटवाये।

बहू तो बहुत सुलक्षणी आयी है। घर में उसके पांव पड़ते ही अजय को नौकरी मिल गयी। बीमार सास के तबीयत में सुधार होने लगी।' ये सभी बातें निशा के सास-ससुर ही नहीं, आस-पड़ोस के लोग और हित-नातेदार भी कहने लग गये थे। अजय पटना में नौकरी करने लगे। उनको अपने मन लायक नौकरी मिल गयी थी। उनकी तो शुरू से ही पढ़ने-पढ़ाने में रुचि थी। कुछ दिनों बाद निशा भी पटना चली आयी। आखिर कब तक अजय अकेले रहते और होटल का खाना खाते।

अजय बहुत कम समय में ही अपनी मेहनत और प्रतिभा के बल पर पूरे कालेज में काफी लोकप्रिय हो गये। उनकी गिनती एक सफल और कुशल शिक्षक के रूप में होने लगी। इतना ही नहीं, इसी बीच उनके तीन शोध-पत्र भी छप गये और वह भी अन्तरराष्ट्रीय स्तर के शोध-पत्रिकाओं में। अजय की इस सफलता के पीछे निशा का भी कम योगदान नहीं था। वह पूरी तन्मयता से अजय का ख्याल रखती थी। गृहस्थी का पूरा भार उसने अपने ऊपर ले लिया था जिससे अजय इस तरफ से निश्चिन्त रहें और उनको अपने काम में बाधा न हो। निशा तो बहुत पढ़ी-लिखी नहीं थी। इन्टरमिडिएट पास थी। पर वह भलि-भांति जानती थी कि किसी आदमी की सफलता में उसकी पत्नी का कितना बड़ा योगदान होता है। इसी बीच उसकी गोदी में एक लड़का भी खेलने लग गया था। अजय के कालेज चले जाने के बाद निशा को जो अकेलापन सताने लग जाता था, वह अब दूर हो चुका था। लड़के की देख-भाल में और उसे खेलाने-खिलाने में उसका समय कैसे गुजर जाता था, उसे पता ही नहीं चलता था।

अजय की अब यही इच्छा थी कि वे विदेश जाकर किसी विश्वविद्यालय से पी०एच०डी० की उपाधि प्राप्त कर लें। इसके लिए उन्हें जहां-जहां पता चलता, वे आवेदन भी करते। एक दिन कालेज से लौटते, हाथ में एक लिफाफा लिए, बाहर से ही चिल्लाते घुसे - 'निशा, ए निशा, कहां हो? अरे देखो, अमेरिका से ये क्या चिठ्ठी आयी है।

'निशा उस समय पलंग पर मुन्ना को सुला रही थी। अजय ने आते ही खुशी में निशा को गोदी में उठा लिया और पूरे कमरे में वे घूम-घूम कर नाचने लगे। आवाज सुनकर मुन्ना उठ कर रोने लगा। निशा को इतना तो समझ में आ गया था कि अजय को आज कोई बहुत बड़ी सफलता मिली है। अपने पति की खुशी देख उसका चेहरा खिल उठा। उसके शरीर का रोआं-रोआं विहंस उठा। वह हंसते हुए बोली - 'अरे पहले हमको उतारिये जी, नहीं तो आप थक जायेंगे और हांफने लगेगें।' अजय सचमुच में हांफने लगे थे। निशा को उतार कर, लिफाफा की चिठ्ठी उसके हाथ में पकड़ा कर बोले- 'यह देखो, अमेरिका के प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी से पी०एच०डी० करने के लिए मुझे बुलावा आया है। निशा ने पूरी उत्सुकता से चिठ्ठी को उलट-पुलट कर देखा। खुशी में वह समझ ही नहीं पा रही थी कि वह क्या करे। दौड़ते हुए पूजा-घर में जाकर भगवान की मूर्ति के सामने खड़ी होकर, आंख मूंद कर, अपने दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी और कुछ बुदबुदाने लगी। शायद भगवान का शुक्रिया अदा करने लगी। बंद आंखों से दो बूंदें उसके दोनो गालों पर लुढ़क आयीं। उस दिन तो खुशी में निशा को कुछ वैसा नहीं लगा। पर दो-तीन दिन बाद जब उसके दिमाग में यह आया कि अजय कम से कम दो-तीन साल के लिए चले जायेंगे तो ऐसा

लगा जैसे उसका दिमाग ही सुन्न हो गया। वह कांप उठी। कैसे काटेगी इतना लम्बा समय, अजय के बिना। वह भी एक बच्चा लेकर। जिसके लिए वह अपना गांव-घर, मां-बाबूजी, सखी-सहेली सब छोड़ कर आयी, वही अब उसे छोड़ कर जा रहा है। अब वह किसके सहारे रहेगी। गांव पर की भी आर्थिक स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं थी। पति की अनुपस्थिति में उसकी क्या स्थिति रहेगी। परिवार के लोगों का उसके साथ कैसा बर्ताव रहेगा। फिर उसने किसी-किसी से यह भी सुन रखा था कि विदेश जाकर बहुत लोग वहीं दूसरा विवाह कर लेते हैं। निशा को कई प्रकार के भय एक साथ चक्रवात की तरह घेरने लगे। उसके भीतर का आकाश चारों तरफ घनघोर बादल से घिरने लगा था। उसका भविष्य तेज हवा में एक कागज के टुकड़ा के तरह अज्ञात लक्ष्य की ओर उड़ता प्रतीत होने लगा था।

इधर अमेरिका जाने की तैयारी में अजय जुट गये। कालेज से छुट्टी, पासपोर्ट, वीजा वगैरह सम्बन्धित अनेक काम जो उनको करने थे। इस सब के लिए उनके पास समय भी बहुत कम था। एक ओर जाने की खुशी तो दूसरी ओर पहले-पहल देश से बाहर निकलने की घबड़ाहट अजय को रोमांचित करने लगा था। खुशी, भय और घबड़ाहट के मिश्रण का ही परिणाम तो रोमांच होता है।

अजय के चले जाने के बाद अपनी जिन्दगी में आने वाले सूनापन के एहसास से निशा भीतर ही भीतर काफी दुखी रहने लगी थी। पर वह हमेशा सजग रहती थी कि कहीं उसके भीतर का दुख अजय भांप न लें। नही तो, उनको तकलीफ होगी और उनके जाने के उत्साह में कमी आ जाएगी जो उसके लिए बहुत दुखदायी होगी। अकेले में तो निशा खूब रो लेती थी पर अजय के सामने आते ही वह मुस्कुराने का ढोंग करने लगती। उस दिन तो अजय के अचानक सामने आ जाने पर उसने मुस्कुराने की कोशिश क्या की कि उसकी आंखें छलछला आयीं। आंख में कुछ पड़ जाने के बहाने से बड़ा जतन से आंचल से अपनी आंख पोंछने लग गयी थी। अजय ने शायद इसको भांप लिया था।

दो-तीन दिन से अजय कुछ गंभीर रहने लगे थे। एक दिन शाम को बालकोनी में जब वे चुपचाप बैठकर उदास हो कुछ सोच रहे थे तो निशा दो कप चाय बना कर ले गयी। एक कप उनके लिए और एक कप अपने लिए। उनके बगल में कुर्सी खींचकर बैठ गयी। चाय की दो-तीन चुस्की लेने के बाद उसने अजय से बड़े प्यार से कहा- 'एक बात पूछूं ? आप गुस्सा तो नहीं होंगें न? सही बतायेंगें न ? मुझसे कुछ छिपायेंगें नहीं। मेरी विनती है आपसे।'

'पूछो, क्या पूछना है।'

'कुछ बात है क्या? कुछ दिनों से आप बहुत चिन्तित लग रहे हैं।'

'अरे नहीं निशा। वैसी कोई बात नहीं है।' यह कहते अजय का गला रुंधा गया। फिर उन्होंने आगे रूक-रूक कर बोलना शुरू किया - 'लग रहा है निशा कि मैं अमेरिका नहीं जा पाऊंगा। जाने-आने के हवाई जहाज के भाड़े का इंतजाम मुझे स्वयं करना होगा। इतना ही नहीं, वहां यूनिवर्सिटी जो पैसा देगी उसमें यूनिवर्सिटी की फीस देने के बाद जो बचेगा वह वहां रहने-खाने के लिए कम पड़ जायेगा। वैसे तो वहां मैं कोई पार्ट-टाइम काम करके उसकी पूर्ति कर लूंगा। बहुत लोग ऐसा करते हैं वहां। पर शुरू में दो-तीन महीना जबतक कोई काम नहीं मिलेगा, पैसे की जरूरत होगी न। मुझे नौकरी करते भी बहुत दिन नहीं हुआ है कि मैंने कुछ पैसा जमा कर लिया हो। घर के खर्चा -वर्चा से जो कुछ भी बचता था उसे गांव पर मकान बनवाने में बाबूजी को दे दिया करता था।'

इतना कह अजय चुप हो गये। बाहर तो उनकी नजर खाली पड़ी प्याली पर टिकी थी लेकिन भीतर उनकी नजर उनके सपने में पड़ी एक दरार पर अंटकी थी। उस दरार के बढ़ने और उनके सपने के ढहने का भय उनको सताने लगा था। थोड़ी देर बाद फिर उन्होने बोलना शुरू किया - 'और फिर निशा, मुझे तुम्हारी और मुन्ना की भी चिंता है। तुम यहाँ कैसे रहोगी? मुन्ना की परवरिश कैसे होगी? और यही नहीं, तुम लोगों के बिना मैं कैसे रह पाऊंगा इतना दिन वहां?' अजय अभी बोल ही रहे थे कि उनके कान में सिसकने और नाक सुरकने की आवाज आयी। उन्होने नजर उठा के निशा की ओर देखा। निशा एक टक से अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से अजय को देख रही थी। उसकी दोनों आंखें लबालब भरी हुई थीं और दोनों गाल पर आंसू के दो मोटे-मोटे धार लुढ़क आये थे। अजय ने निशा का हाथ अपने हाथ में लेते ही निशा ने उनकी छाती पर अपना सिर टिका दिया और जोर-जोर से सिसकने लगी। अजय की आंखों से भी दो बूंद आंसू उसके माथे पर टपक पड़े। फिर सिर उठा कर, आंख पोंछ कर वह सुसक-सुसक कहने लगी - 'आप हिम्मत मत हारिये जी। आप ही हिम्मत हार जायेंगे तो मेरा क्या होगा। आप हम लोगों की चिंता बिल्कुल न करें। दो-तीन साल गुजरते कोई देर लगेगी क्या? देखते-देखते निकल जायेगा। फिर आप जब उधर से लौट कर आयेंगे, मुन्ना स्कूल जाने लायक हुआ रहेगा। उसका किसी अच्छे स्कूल में नाम लिखवा दिया जायेगा।

'फिर अपनी भींगीं हुई आंखों से अजय की ओर तिरछे देखते हुए मजाक के लहजे में होंठों पर एक हल्की मुस्कान के

साथ बोली - 'और बाप का नाम लिखा जायेगा, डा० अजय कुमार चौबे', इस पर अजय के होंठ पर भी एक हल्की मुस्कान झलक आयी।

'रही बात पैसे की तो उसका कोई न कोई समाधान जरूर निकल आयेगा। आपके लिए भगवान से मैं इतना मनाती रहती हूँ। वे मेरी इतनी भी नहीं सुनेंगे। भगवान पर विश्वास रखिये और अपने जाने की तैयारी कीजिये। मन छोटा बिल्कुल मत कीजिये।' निशा का कहा हुआ कितना सच होता, यह तो अजय को नहीं पता था, पर इससे उनको काफी ढ़ाढ़स मिला।

उस दिन नयी दिल्ली रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर बैठ कर पटना जाने वाली राजधानी एक्सप्रेस की प्रतीक्षा कर रहा था। गाड़ी के आने में कुछ विलम्ब था। मुझसे थोड़ी ही दूरी पर एक दूसरे बेंच पर एक सीधी-सादी युवती गोद में एक एक-डेढ़ साल का बच्चा लिए बैठी थी। जाहीर था कि वह भी किसी गाड़ी का इंतजार कर रही थी। उस युवती की सादगी और उसके चेहरे पर की गम्भीरता के प्रति मेरा ध्यान अनायास आकर्षित हो गया। उसके चांद जैसे चेहरे पर एक अजीब मासूमियत और संतोष का भाव झलक रहा था। वह चुपचाप बैठे किसी और दुनिया में डूबी हुई थी।

बहुत देर गौर से देखने के बाद मुझे लगा कि कहीं वह अपने गांव के दक्खिन टोला के रमेश भैया की बेटी निशा तो नहीं है। अपने बचपन में तो निशा मेरे घर अक्सर आती रहती थी। मेरी बेटी प्रज्ञा और वह सहेलियां थीं। इधर निशा को देखे हुए दस-बारह वर्ष हो गये थे। ऐसे भी विवाह के बाद लड़कियों के चेहरे में और शरीर के डील-डौल में बहुत परिवर्तन आ जाता है।

मैं जाकर उसके बेंच के पास खड़ा हो गया और सहमते हुए धीरे से बोला - 'निशा?' वह अचकचा गयी। हां, वह निशा ही थी। 'अरे, अमरेन्द्र चाचा, आप? आप यहां कैसे?' आश्चर्य और खुशी, दोनों के भाव एक साथ उसके चेहरे पर झलक आया। तुरन्त उठ कर उसने मेरा पैर छू कर मुझे प्रणाम किया। मैने आशीर्वाद दिया और कहा- 'अरे, मैं तो दिल्ली आता-जाता ही रहता हूं। तुम बताओ कि तुम यहां कैसे?' यह कह कर मैंने उसको बैठने को कहा और मैं भी उसकी बगल में बैठ गया।

'चाचा, आज वे अमेरिका गये, पी०एच०डी० करने। उन्हीं को छोड़ने आयी थी। आज सुबह नौ बजे उनकी फ्लाइट थी। 'इसी बीच बीस-बाइस वर्ष का एक नवजवान ने एक पालीथीन में कुछ बिस्कुट, टाफी, मिक्सचर आदि और एक बोतल पानी ले आके निशा को दिया। मेरे पूछने के पहले ही निशा ने बताया कि वह उसके देवर हैं और वह उन्हीं के साथ आयी है।

'उनका सारा खर्च तो वहां की यूनिवर्सिटी ने दिया होगा?' मैंने उत्सुकतावश पूछा। 'ना चाचा' उसने कहना शुरू किया, 'जाने-आने का भाड़ा अपने देना है। यहां तक कि वहां रहने और खाने-पीने में भी हाथ बहुत कस कर रखना पड़ेगा। 'यह कह कर वह अचानक चुप हो गयी। अपनी आंखें बंद कर ली। माथा पर के शिकन और भौंह के सिकुड़न से लगा कि पति के वियोग में अपने भीतर उठी टीस को किसी तरह बर्दास्त करने का प्रयास कर रही हो। थोड़ी देर बाद उसने आंखें खोलीं तो दोनों आंखें आंसू से लबालब भरी थीं। आंख पोंछकर रूक-रूक कर उसने फिर बोलना शुरू किया-

'उनकी बड़ी इच्छा थी कि वे विदेश से पी०एच०डी० करें। लेकिन पैसा की समस्या थी। मैं शुरू से ही कह रही थी मेरे पास जितने गहने हैं, वे सब बेच दें। आखिर यह सब किस दिन काम आयेंगें। लेकिन तैयार ही नहीं हो रहे थे। बहुत कहने पर और कसम देने पर वे किसी तरह जा कर तैयार हुए। आज उनके जीवन की एक बहुत बड़ी साधा पूरी हुई, चाचा। आज मैं बहुत खुश हूं। बहुत खुश हूं।' इतना कहते उसकी आंखें फिर भर आयीं जिनमे शायद उसे अपने प्रियतम का चेहरा तैरता नजर आने लगा और उस चेहरे को अपनी नजरों में कैद कर लेने के लिए उसने अपनी दोनों आंखें फिर से बंद कर ली। उसी समय बगल में कहीं ट्रांजिस्टर पर गाना बज रहा था - 'हर खुशी हो वहां, तू जहां भी रहे। रोशनी हो वहां, तू जहां भी रहे।'

'निशा' मैंने धीरे से उसका हाथ झकझोरा। आंख खोलते उसने कहा - 'चाचा, पटना में मेरी फूआ रहती हैं। कई दिनों से मुझे बुला रहीं हैं। मैं पटना आऊंगी तो आपसे जरूर मिलूंगीं।' मैंने उससे अपने यहां आने का वादा लिया और मुन्ना के हाथ में दो सौ रुपया देकर उससे विदा लिया। मेरी गाड़ी की आने की सूचना प्रसारित होने लगी थी। निशा की गाड़ी की भी आने का समय हो चला था।

दिल्ली से पटना तक पूरा रास्ता मैं निशा के बारे में ही सोचता रहा। मेरा हृदय उस लड़की के प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो गया था। अपने पति की तरक्की खातीर अपने त्याग में ही उसे सुख की अनुभूति हो रही थी। पति की खुशी खातीर अपने दुख में भी वह खुश थी। सचमुच प्रेम और सुख की परिभाषा बड़ी विचित्र है। मुझे तो यही लगता है कि जहां प्रेम है वहां त्याग है और जहां त्याग है, वहीं सुख है।

रामायण-महाभारत-पौर्वापर्य

अमरनाथ पाठक

रामायण और महाभारत संस्कृत वाड्मय के दो महत्वपूर्ण पौराणिक ग्रन्थ है। पाश्चात्य विद्वान दोनों को महाकाव्य की संज्ञा देते है किन्तु भारतीय दृष्टि से रामायण काव्य है और महाभारत इतिहास। आकार-भेद में महाभारत रामायण से बड़ा है। रामायण में जहाँ 24000 श्लोक हैं तो महाभारत में एक लाख। वाल्मीकि-कृत रामायण में मर्यादापुरूषोत्तम राम का सम्पूर्ण जीवन चरित वर्णित है तो महाभारत में कुरुवंश का इतिहास तथा कौरवों और पाण्डवों के मध्य भीषण संग्राम का वर्णन है।

परम्परा रामायण की रचना त्रेतायुग के अन्त में और राम के जीवनकाल में हीं मानती है। व्यासरचित महाभारत कलियुग के प्रारम्भ में रचित मानी जाती है। आधुनिक विद्वान दोनों की भाषा-शैली के आधार पर महाभारत को पूर्ववर्ती रचना घोषित करते हैं। रामायण की भाषा-शैली महाभारत की अपेक्षा ज्यादा परिपक्व और साफ-सुथरी है। अत: भाषा विज्ञान की दृष्टि से रामायण परवर्ती रचना सिद्ध होती है। किन्तु यहाँ यह तथ्य भी द्रष्टव्य है कि दोनों महाकाव्यों की रचना एक बार ही नहीं हुई। अपितु इनका विकास क्रमश: हुआ। महाभारत का विकास तीन चरणों में हुआ। पहले 'जय' नामक ग्रन्थ में आठ हजार श्लोक थे। फिर श्लोकों की संख्या में क्रमश: वृद्धि हुई और यह 24000 हजार श्लोकों वाला 'भारत' नाम का ग्रन्थ हुआ।

अन्तत: प्रक्षेपांशों में वृद्धि होते हुए यह ग्रन्थ एक लाख श्लोकों वाला हो गया (शतसहस्र संहिता)। जैकेबी के अनुसार रामायण का भी प्रथम-काण्ड का आरम्भिक भाग और संपूर्ण उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है। ये प्रक्षिप्तांश महाभारत के मौलिक भाग की रचना के बाद ही जोड़े गए। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि रामायण का मौलिक भाग महाभारत की रचना से पूर्व का है।

महाभारत के वनपर्व में रामकथा रामोपाख्यान रूप में पाई जाती है। वाल्मीकि के नाम का भी उल्लेख महाभारत में है। किन्तु रामायण में महाभारत के अंश नहीं पाए जाते।

महाभारत में रामायण के युद्ध काण्ड के दो श्लोक प्रसंग निर्देश पूर्वक उदृत हैं।

इससे ज्ञात होता है कि महाभारत का वर्तमान स्वरूप रामायण के विकसित रूप से अनुवर्ती है। इसी आधार पर जर्मन विद्वान विण्टरनिट्ज कहते हैं कि यदि महाभारत ने अपना वर्तमान रूप ईशा पूर्व 400 में प्राप्त किया तो रामायण का परिनिष्ठित रूप अवश्य ही इससे एक-दो सौ वर्ष पूर्व का होगा।

अन्तरंग साक्ष्यों के आधार पर भी दोनों ग्रन्थो के पौर्वापर्य के विषय में विचार किया जा सकता है। रामायण के पात्र आदर्शभूत है जबकि महाभारत के पात्र लौकिक गुणों से अभिभूत मानव पात्र है। रामायण में वर्णित युद्ध-पात्र मानव-राक्षस जाति से संबद्ध है, किन्तु महाभारत में ऐसा नहीं है। रामायण में युद्ध-कला का वैसा विकास नहीं दीख पड़ता जैसा कि महाभारत में प्राप्त होता है। अत: युद्ध कला की दृष्टि से भी महाभारत अर्वाचीन सिद्ध होता है।

दोनो काव्यों में प्रतिबिम्बित समाज भी भिन्न है। रामायण में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का दृढ़ता से पालन दिखाया गया है, किन्तु व्यास के काल में वर्णबन्धन कुछ ढ़ीले पड़ गए थे। नैतिकता का स्वरूप भी कुछ परिवर्तित हो गया था। रावण द्वारा अपहृत होने के कारण सीता को अग्निपरीक्षा देनी पड़ती है जो कि भारतीय सभ्यता के प्राचीन-कालिक रूप को दर्शाता है।

किन्तु जयद्रथ द्वारा अपहृत होने के बाद भी द्रौपदी को बिना परीक्षा के पुनः स्वीकार कर लिया जाता है। इस प्रकार नैतिकता का स्वरूप महाभारत काल में शिथिल हो गया था।

रामायण के काल में भारत के वैदेशिक सम्बन्धों की प्रगति नहीं दीख पड़ती है। विदेश के रूप में लंका का नाम ही आता है। किन्तु महाभारत में अनेक देशों का नाम आता है। रामायण के समय दक्षिण भारत में हिंस्रजातियों का निवास था, किन्तु महाभारत में वहाँ राजनीतिक व्यवस्था पाई जाती है। अनेक दाक्षिणात्य राजा महाभारत-युद्ध में सम्मिलित हुए थे। उनकी धार्मिक स्थिति से भी उनके पौर्वापर्य का निरूपण होता है। रामायण में विशेष रूप से ब्राह्मण-धर्म प्रकाशित है जहाँ वैदिक कर्मकाण्ड प्रधान था। किन्तु महाभारत में धर्म के अनेक रूप प्रकाशित होते हैं, जैसे- एकेश्वरवाद, बहुदेववाद, अध्यात्मवाद, नास्तिकवाद आदि।

महाभारत में वर्णित सभ्यता अशान्तिमय एवं अव्यवस्थित है, किन्तु रामायण की सभ्यता अपेक्षाकृत अधिक शिष्ट, सुसंस्कृत एवं आदर्श है। इस आधार पर पाश्चात्य विद्वान यह अनुमान करते है कि महाभारतकालीन संस्कृति रामायणकालीन संस्कृति की अपेक्षा प्राचीनतर है। किन्तु पाश्चात्य विद्वानों के इस अनुमान के मूल में उनका विकासवाद का सिद्धान्त है, जिसके अनुसार मनुष्य उत्तरोत्तर अधिक सभ्य एवं शिष्ट बनता जाता है। हमारा भारतीय दृष्टिकोण इसके विपरीत है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का क्रम मनुष्य की उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुखी प्रकृति का ही परिचायक है। रामायण सत्ययुग की झाँकी कराती है तो महाभारत कलियुग के आगमन की सूचना देता है।

कुंभ

डॉ० पूनम आनंद, पटना
मो० : 8789041567

अरे भाग्यवान!'' चलो न इस बार कुंभ स्नान हमदोनों भी कर ले''।

अमित अपनी पत्नी सरोज को अखबार पढ़कर सभी को स्नान करते देखकर बोलने लगे।

''नहीं जी, मैं तो अभी कुंभ स्नान की बात दूर बगल में कथा पूजन में भी नहीं जा पाऊंगी''।

तुम्हारी यही बात मेरी समझ से बाहर है।

'अरे भाई! किसी एजेंसी वाले से संपर्क कर के मां की देखभाल के लिए सहायिका को रख लेते हैं, लेकिन तुम तो बिल्कुल जिद पकड़कर बैठी है। यही मेरी पूजा है, मैं ऐसी अवस्था में इन्हें किसी पर छोड़कर कही नहीं जाऊंगी'।

हाय राम!' कैसी अजीब बात कर रहे है जी, जब मां आपसे कुछ सेवा नहीं लेती है, यहां तक की खाती भी नहीं है तो वो गैर से क्या करवाऐगी'।

तो बैठो झक मार के 'चार साल हो गये, देखते देखते आगे पता नही और कितने लगेगे'?

'चार हो या चालीस मुझे तो चिंता ही नहीं है' जब मैं उन्हें मन माफिक तैयार करती हूं तो वे प्यार से मेरे सिर पर हाथ रखती है'।

मेरी जन्नत मेरा कुंभ स्नान सभी इनके चरणों में---आप जा सकते हो, मुझे शिकायत नहीं है।

चाभी

अरे बच्चों!' मैं कब से इतनी गर्मी में दरवाजे पर खड़ा होकर डोर बेल बजा था और तुमलोग मुझे चाभी तक नहीं दे रहे हो'।

अरे वाह!' नाना जी आप डोर बेल बजा रहे है'?।

हाँ! भाई! हाँ!' मैं तुमलोगो का नाना ही हूँ, चलो अब तो चाभी लेकर आओ और द्वार पर लगे ताला को खोल दो'।

क्या करे नाना जी!' मम्मी-पापा की सख्त हिदायत है चाहे कोई भी दरवाजे पर आये चाभी नहीं देना है'।

इस कारण कोई भी घंटी बजती है तो हमलोग देखने भी नहीं जाते है।

ओह!' बच्चे तब तो तुमलोग को सिखाने वाले की ही कमी है'।

कालजयी भगवान परशुराम

शंभु नाथ पाण्डेय
आशियाना नगर फेज-2, पटना - 25
मो० : 9430066676

वैदिक वांग्मय में कहा गया है कि ''आराधनानां सर्वेषां विष्णोः आराधनं परम्.

विष्णु की स्थिति सर्वोपरि है. विष्णु की इच्छा से ही सृष्टि चलायमान होती है, इसके सारे अवयव कार्य करते हैं. अतः सृष्टि के कण कण में प्रविष्ट विष्णु का कोई अवतार होता है तो उसका एक विशेष उद्देश्य, कारण और महत्त्व होता है. अपने बल के प्रदर्शन हेतु जब स्वयं विष्णु को अवतार लेना पड़े तो कारण अवश्य गंभीर होगा, तथा उस अवतार को समेटने की जगह उसे धारा पर चिर काल के लिए रहने दें तो मनीषियों के लिए यह घटना मंथन का महत्वपूर्ण विषय होना चाहिए.

राम का आविर्भाव बिहार के जमनिया (जमदग्नि) नामक स्थान पर हुआ. वे भृगुवंशी थे तथा ऋच्चिक ऋषि के पुत्र एवं ऋषि जमदग्नि-रेणुका के संतानों में से एक थे. विद्वान, सुन्दर सुडौल कद काठी एवं व्यक्तित्व के धनी होने के कारण पिता ने उनको ''राम'' नाम दिया. परम्परा के अनुसार उनके परिवार में धनुर्विद्या आ रही थी. वेदों के पठन पाठन में निपुणता के वावजूद पिता ने उन्हें वंश परम्परागत धनुष (धानुर्विद्या) प्रदान की, पर उनका प्रिय अस्त्र परशु रहा. परकाल में उन्हें अपने प्रिय अस्त्र के कारण परशुराम नाम ही ज्यादा प्रिय था. परशुराम अचानक सीता स्वयंवर में प्रकट होते हैं. वाल्मीकीय रामायण के अनुसार यह मुलाकात जब होती है उस समय विवाहोपरांत राम, लक्ष्मण, दशरथ आदि के साथ जनकपुरी से वापस लौटने हेतु उद्यत हैं. रामचरितमानस के अनुसार धनुष भंग के पश्चात सीता के विवाह पूर्व परशुराम और दाशरथि राम का संवाद होता है.

भगवान परशुराम का अवतार कोई सामान्य घटना नहीं थी. वे श्री भगवान के पराक्रम के प्रदर्शक थे. वेदाध्यायी उद्भट विद्वान, शास्त्रज्ञ, अस्त्र शस्त्र के निर्माण संचालन और उपयोग में निपुण तथा आचार्यों के भी आचार्य परशुराम के व्यक्तित्व की आभा विचित्र है. वे निडर थे, कुशल योद्धा थे, आज्ञाकारी पुत्र थे, वैज्ञानिक, अनुसन्धान कर्ता, समाज सुधारक थे तथा प्रकृति के संरक्षण हेतु समर्पित थे. इतिहास में इस प्रकार के बहुआयामी व्यक्तियों की संख्या कुछ ही है. श्री परशुराम ने जो कार्य किये उनके दूरगामी परिणाम होनेवाले थे. श्री परशुराम का का व्यक्तित्व प्रसिद्धि की चकाचौंध से कोसों दूर अपनी प्रतिभा से सुदीप्त है. उन्हें किसी की अनुशंसा या विवरण की प्रतीक्षा नहीं थी. वे स्वयं प्रकाशपुंज थे, प्रतिभा के पर्याय और पुरुषार्थ ज्ञान एवं कौशल के ज्वलंत उदाहरण.

कभी-कभी कुछ घटनाएँ अनायास घट जाती हैं जिनके कारण जीवन दिशा में अनचाहे परिवर्तन हो जाते हैं. सीधेसादे राम के साथ भी ऐसा ही हुआ. एक बार कार्तवीर्य अर्जुन (सहस्त्र राम) शिकार के क्रम में ऋषि जमदग्नि के आश्रम में आ पहुंचा. ऋषि की सुन्दर आवभगत से प्रसन्न होने की जगह उसने उनकी सम्पन्नता का कारण पूछा. सरल जमदग्नि ने बता दिया कि वह सारी सुव्यवस्था सुरभि गौ के प्रभाव से थी. कृतज्ञता प्रकट करने के स्थान पर अर्जुन ने ऋषि की पिटाई कर, उनसे गौ छीन ली और लेकर अपनी राजधानी चला गया. जब परशुराम वापस आये तो उन्हें राजा के व्यवहार पर क्रोध उमड़ पडा. वे परशु लेकर गए और अर्जुन के यहाँ से अपनी गौ वापस लेकर आ गए. अर्जुन ने इस अपमान का बदला लेने का निश्चय किया. एक समय जब परशुराम कही जंगल में समिधा इकट्ठा करने गए थे उसी समय उसने बलपूर्वक आश्रम से गौ को छीन लिया और जमदग्नि को उनके सम्पूर्ण परिवार के साथ मार डाला. जमदग्नि - जो उस समय यज्ञ कर रहे थे - को यज्ञ कुंड में ही जला दिया गया. गौ को लेकर अर्जुन वापस अपनी राजधानी में चला गया. श्री परशुराम ने वापस आने पर अपने परिवार का हृदय विदारक दृश्य देखा. उन्होंने इसका बदला लेने की ठानी. शास्त्रज्ञ राम को शस्त्र धारण करना पडा. अकेले उन्होंने सहस्र राम अर्जुन को एक हजार पुत्रों के साथ समाप्त कर दिया. एक घटना ने राम को परशुराम बना दिया.

क्या परशुराम हिंसक थे ?

एक मिथ्या अवधारणा है कि परशुराम हिंसक स्वभाव के थे. वे अस्त्र और शस्त्रों को लेकर चलते फिरते थे या उनका जनप्रदर्शन लोगों में भय उत्पन्न करने के लिए करते थे. स्वयं

उनके पिता ने उनको धनुर्विद्या दी. इतना ही नहीं, कठिन तपस्या के बल पर उन्होंने भगवान शिव को प्रसन्न कर दिव्यास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया. बचपन में ही पिता के कहने पर उन्होंने नि:संकोच अपनी माँ तक का वध कर डाला. सहस्रराम के सम्पूर्ण कुल का विनाश किया. स्वयं भगवान राम को भी युद्ध के लिए ललकार दिया. 37 बार पृथ्वी को क्षत्रियों से मुक्त किया. अपने तक ही सीमित नहीं कर उन्होंने युद्ध विद्या सिखाने के लिए गुरुकुल भी स्थापित किया. प्रमुख युद्ध कौशल विशेषज्ञ और महारथी भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि उनके शिष्यों में से थे, जो महाभारत और उसके कारण महाविनाश के प्रमुख कारक थे.

इतिहास में अगर दृष्टि डालें तो यह ज्ञात होता है कि भारतीय योद्धा भारत के बाहर या देश की सीमा विस्तार की जगह आपस में ही निरर्थक युद्ध पात करते रहते थे. तत्कालीन युद्ध या दंगलों में भी शारीरिक बल की प्रमुखता थी. अधिक से अधिक लाठी या गदा का ही प्रयोग होता था. बेवजह हिंसा और युद्धों से समाज में स्थिरता का अभाव था. प्रजा संत्रस्त रहती थी. इन सारे अव्यवस्था के कारण मनीषी ऋषि और विद्वान अरण्यों में रहने को विवश थे. इस अनर्थ को सही करना आवश्यक था. परशुराम ने युद्ध के नियमों में परिवर्त्तन किया. अब योद्धा अपने कौशल का प्रदर्शन करेगा और अगर उसका कौशल बेहतर है तो प्रतिद्वंद्वी पराजय स्वीकार करे. अस्त्रों को देखकर आक्रान्ता सतर्क रहता था. योग्य एवं कुशल लोग अस्त्र शस्त्रों का समाज की सुरक्षा और जनहित में सदुपयोग करें और उसके दुरुपयोग को रोकें. इस हेतु युद्ध शिक्षण की पात्रता हेतु शारीरिक बल के साथ साथ नैतिक और चारित्रिक बल पर जोर दिया गया. इतिहास साक्षी है कि रण कौशल का दुरुपयोग, अधर्मी, भीरु एवं चरित्रहीन लोगों द्वारा ही हुआ है. परशुराम के अनुसार स्वार्थलोलुपता एवं अहंकार की रक्षा हेतु किया गया क्रोध वर्जनीय है, परन्तु अन्याय और अनीति के विरुद्ध क्रुद्ध होना उच्च आदर्शों का परिचायक है. महाभारत में पात्रों के आचरण इसी आधार पर उचित या अनुचित माने गए.

क्षत्रिय संहार एक मिथ्या अवधारणा

श्री परशुराम के बारे में दूसरी भ्रान्ति है कि उन्होंने पृथ्वी को 37 बार क्षत्रियविहीन किया या क्षत्रियों को मार डाला. इस मिथक के बारे में पहले तो यही कहा जा सकता है कि यदि परशुराम ने सभी क्षत्रियों को मार डाला तो फिर सूर्यवंश के दशरथ, कौशिक गोत्रीय गाधि तथा उनके वंश के विश्वामित्र, तथा विदेह के जनक आदि राजा कैसे बच गए थे ? शास्त्रों के अनुसार आर्यावर्त में सहस्र राम अर्जुन के सिवा परशुराम द्वारा किसी क्षत्रिय के मारने की चर्चा किसी भी ग्रन्थ में नहीं है.

रामचरित मानस में धनुष यज्ञ प्रकरण देखें तो लिखा है –

''भूप सहस दस एकहि बारा, लगेउठावन टरइ न टारा. (रा.च. मा. बाल 250-1)

दस हजार राजा एक साथ धनुष को उठाने लगे पर वह अपने स्थान से हिला नहीं. अर्थात दस हजार राजा तो एक साथ जनक के यज्ञ में उपस्थित थे जो धनुष उठा रहे थे. आगे भी जब सभा में भगवान परशुराम ने प्रवेश किया उस समय राजाओं की चर्चा है – तुलसीदास जी राम चरित मानस में लिखते हैं –

''पितुसमेत कहि कहि निज नामा, लगेकरन सब दण्ड प्रनामा (रा.च.मा. बाल 268-1)

जितने राजा थे वे परशुराम के आने पर पिता के नाम के साथ अपना परिचय दे देकर उनको दण्ड प्रणाम करने लगे. अत: जनक की सभा में अन्य और भी कई राजा थे जिन्होंने अपना परिचय श्री परशुराम को दिया. इससे यह भी स्पष्ट है कि वहाँ उपस्थित राजा उनसे त्रस्त नहीं थे. यह इस धारणा को दृढ़ करता है कि ''क्षत्रिय वध'' एक अज्ञानजन्य भराती है. परशुराम ने क्षत्रियों का वध नहीं किया. उनका उद्देश्य कुछ और था.

परशुराम की चर्चा श्रीमद्भागवत महापुराण में भी आती है. वहाँ पर महर्षि जमदग्नि की अर्जुन द्वारा नृशन्स हत्या के पश्चात परशुराम की व्यथा पर महर्षि व्यास कहते हैं.

विलप्येवंपितुर्देहं निधाय भ्रातृसुस्वयम्, प्रगृह्य परशुंराम: क्षत्रान्ताय मनो दधे. (श्रीमद भा. 7-16-16)

यज्ञ अग्नि मेदग्धा पिता और भाइयो के शरीर को देखकर परशुराम ने विलाप किया और परशु ग्रहण कर राज सत्ता को समाप्त करने का मन बनाया. अर्थात परशुराम ने राजक्षत्र में परिवर्त्तन का संकल्प लिया. अवतारो की चर्चा के प्रकरण मे श्रीमदभागवत मे परशुराम की चर्चा श्री विष्णु के सोलहवें अवतार के रूप में की गयी है. वहाँ पर भी महर्षि व्यास ने लिखा है :-

अवतारेषोडशमेपश्यन ब्रह्मद्रुहो नृपान, त्रिसप्तकृत्व: कुपितो नि:क्षत्रं अकरोन्महीम्. (श्रीमद भा.1-3-20).

ब्राह्मणद्रोही (विद्वानों से द्रोह या उनका तिरस्कार करनेवाले) राजाओं की स्थिति को देखकर क्षुब्ध श्री परशुराम

ने समस्त भूमंडल में राजसत्ता में परिवर्त्तन किया, या पृथ्वी को नि:क्षत्र किया. इसका वास्तविक उद्देश्य निरर्थक एवं उत्पीड़क स्वामित्व से भूमि को मुक्त करना था, ताकि उसका सही उपयोग या जनहित में दोहन हो सके.

श्री परशुराम के उद्घोषणा की रामचरितमानस से भी पुष्टि होती है कि ''मैंने अपने बाहुबल से राजाओं को भूस्वामित्व से मुक्त किया. जमीन का स्वामित्व अच्छे लोगों में – जो उसका सही उपयोग करे, मैंने हस्तांतरण किया''. क्षत्रिय उनसे वापस झपट लेते थे अत: यह काम बार बार – 'बिपुल बार' – करना पडा. जमीन का जो सही उपयोग करता था, उसे वे दे देते थे. परशुराम की इच्छा स्वयं राजा बनने की नहीं थी. उनके ही शब्दों में –

भुजबल भूमि भूप बिनुकीन्ही, बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही. (राम च. मा. बाल 271–7)

जयदेव कृत दशावतार स्त्रोत्र में भी परशुराम के बारे में कहा गया है कि भृगुपति ने धारा को, क्षत्रियों के पाप से त्रस्त संसार की पीड़ा से मुक्त किया – क्षत्रियों से नहीं.

क्षत्रिय रुधिरमयेजगदपगत पापम्, स्नपयसि पयसि शमित भवतापम्, के शव धृत भृगुपति रूप, जय जगदीश हरे. (दशावतार स्तोत्र 6 – जयदेव).

संस्कृत भाषा और व्याकरण के विद्वान 'क्षत्र' का अर्थराज–क्षत्र से लेते हैं. प्राचीन काल में (सत्य एवं त्रेता युगों में) भूस्वामित्व के कारण और जन समूह की अध्यक्षता हेतु राज्य के अधिपति को ''भूपति'' या ''नृपति'' कहा जाता था. इस शासन व्यवस्था का कालान्तर में दुरुपयोग होने के कारण क्षत्रिय निरंकुश होकर अत्याचार करने लगे. वशिष्ठ और जमदग्नि जैसे अरण्य वासी मनीषियों पर भी जब अत्याचार होने लगे तो, फिर सामान्य जनता के कष्टों का अनुमान मात्र ही किया जा सकता था. जन समूह ने कृषि जैसे आवश्यक कार्यों को बंद कर दिया था. इसीका दुष्परिणाम था कि मिथिला जैसे जल–बहुल क्षेत्र में भी अकाल पड गया और जनक को भी उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए स्वयं हल चलाना पडा. परशुराम का संकल्प इसी पृष्ठभूमि में देखना चाहिए.

श्री परशुराम द्वारा क्षत्रियों को मारने की बात किसी स्थान पर नहीं कही गयी. इसका वास्तविक अर्थ यह है कि तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार भूमि का उपयोग ठीक से नहीं हो पा रहा था. भू स्वामित्व निरर्थक अनुपयोगी और उत्पीड़क था. उत्पादन बंद था. प्रजा अकाल और भूख से त्रस्त थी. इसी हेतु परशुराम ने भूमि सुधार के प्रयास किये तथा भूस्वामित्व को 'भूपतियों' से मुक्त कर कृषि में लगे लोगों में दे दिया. यह अकेले शायद संभव नहीं हो पाता, अत: इस भूसुधार आन्दोलन ने शीघ्र ही महत्त्वपूर्ण तथा व्यापक जन आन्दोलन का रूप ले लिया.

जन समूह के समर्थन के कारण यह सफल रहा. इस घटना के बाद राजाओं का उत्तरदायित्व पृथ्वी और सीमाओ के संरक्षण तक सीमित हो गया. वे 'भूपति' और 'नृपति' से 'भूप' और 'नृप' या 'भूपाल' अर्थात पालक या रक्षक बन गए. विशेषज्ञ लोगों ने जंगलों से वापस आकर कृषि क्षेत्र में नए–नए उत्पाद प्रारंभ किये. स्वयं विश्वामित्र ने उस काल में कई अन्नों का निर्माण किया जो आज भी उनके नाम पर 'विश्वामित्रीय अन्न' कहलाते हैं. यह भूमि सुधार (land reforms) की अपने आप में अभूतपूर्व क्रान्ति थी. इसी प्रक्रिया को अनेक शताब्दियों के पश्चात मौर्यकाल में चाणक्य द्वारा तथा बाद में शेरशाह सूरी और समकालीन महाराज टोडरमल, एवं संत विनोबा भावे ने पचास वर्षों पूर्व भूदान आन्दोलन के रूप में प्रारम्भ किया.

शस्त्रों के अनुसंधानकर्ता परशुराम

सैन्य बल विकास, समृद्धि और शान्ति का पोषक होता है. शान्ति आवश्यक है पर उसकी रक्षा के लिए शक्ति जरूरी है. वाहुबल सार्वभौमिकता का प्रतीक है. क्षत्रियों द्वारा शक्ति के सृजनात्मक प्रतीक के रूप में दुर्गा की आराधना सदा होती रही है. बुद्ध के प्रभाव में, तथा उत्तर मुगलकाल में भी सैन्य बल की उपेक्षा के कारण भारत पर विदेशियों के आक्रमण होने लगे. कमजोर देश पर सभी प्रभुत्व जमाना चाहते हैं. अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग आवश्यकतानुसार होना चाहिए. इस क्षेत्र में नए अनुसंधान की निरंतर आवश्यकता है. श्री परशुराम ने युद्ध के क्षेत्र में अनेक अनुसंधान किये. उनके द्वारा कई नए अस्त्रों का विकास हुआ. शस्त्रों में परशु तलवार, गदा आदि. अस्त्रों में – जो फेंक कर चलाये जाते थे – भाला या बल्लम, धनुष – तीर, शूल आदि प्रमुख थे. ये सभी तत्कालीन साधारण लकड़ी के बने आयुधों – लाठी या गदा – की जगह धातु के बने थे . ये ज्यादा टिकाऊ थे और गहरा घाव करते थे. बिहार में लोहे की प्रचुर उपलब्धता के कारण इसका अनुसंधान निर्माण तथा विक्रय भी होता था (इसी कारण मगध के साम्राज्य में सशक्त सैन्यबल और आर्थिक सम्पन्नता रही). यह विदेश व्यापार या निर्यात का

मुख्य अंश था. सामान्य अस्त्रों के साथ साथ दुर्जन समूह के विनाशकारी शस्त्रों का भी इन्होंने विकास किया, जैसे मानवास्त्र, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र आदि – जो आधुनिक नाभिकीय अस्त्रों से अधिक उन्नत थे. कुछ रासायनिक या स्नावयिक अस्त्रों जैसे जृम्भास्त्र (जिसके प्रहार के बाद जम्भाई या नीद आने लगती थी), या सर्पास्त्र या नागास्त्र (जिस पर साँपों का विष लगाकर या सांप ही छोड़े जाते थे), का वर्णन भागवत पुराण में आता है. इनकी संहारक क्षमता तथा नियंत्रण एवं छोड़ने के बाद उपसंहार (वापसी) की क्षमता आधुनिक विज्ञान के युग में अभी तक संभव नहीं हो पायी है. इन सब हथियारों के ज्ञाता और प्रयोक्ता होने के कारण श्री परशुराम अजेय माने जाते हैं. यहीं तक नहीं, उनके शिष्य भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण आदि भी इसी कारण दुर्जेय माने जाते थे पुरुषार्थ को नमन राम तथा परशुराम में संवाद इस कारण महत्त्वपूर्ण है कि, राम ने पौरुष के स्थान पर विनय का सहारा लिया. यह तत्कालीन क्षत्रिय राजाओ जैसे कार्तवीर्य अर्जुन एवं विश्वामित्र आदि के आचरण के विपरीत था.

क्षत्रियों ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के आगे नतमस्तक होना उचित समझा क्योंकि अब सभी आध्यात्मिक पुरुष सशक्त थे. शास्त्र के साथ शस्त्र या पुरुषार्थ की प्रासंगिकता इस का कारण थी. सत्ययुग यद्यपि आध्यात्मिक काल माना जाता था, पर अंगराज वेन, विदेहराज निमि एवं वशिष्ठ के बीच विवाद, विश्वामित्र तथा वशिष्ठ के बीच दौर्मनस्य, तथा कार्तवीर्य अर्जुन एवं जमदग्नि के बीच की प्रासंगिकता को ध्यान में रखें तो यह प्रतीत होता है की उस काल के क्षत्रिय ब्राह्मणों से द्रोह करने में हिचकिचाते नहीं थे. पूर्व परशुराम काल में विद्वानों ने कलह से अशांति को ध्यान में रखकर सामाजिक व्यवस्था से अपने आप को निर्वासित कर लिया था. लेकिन, शक्ति संपन्न ही आदर का पात्र होता है. परशुराम के पश्चात समाज में अब मर्यादापूर्ण एवं नीतिगत आचरण को सम्मान तथा ज्ञानियों का आदर स्थापित हुआ. दाशरथि राम ने इस परम्परा को अपने वनवास काल में सुप्रतिष्ठित किया. द्वापर काल में यह समाज संरचना का आधार रहा.

शक्ति के लिए पात्रता आवश्यक

शस्त्र विद्या में अद्‌भुत संहारक क्षमता है. अत: इसके उपयोग करने के पहले उत्तरदायित्व का बोध आवश्यक है. इनका दुरुपयोग नहीं हो, इनका प्रयोग आत्मरक्षा हेतु हो. छोटी मोटी विपत्ति में जहां पर छोटे हथियारों से काम चल जाता हो वहाँ पर इनका उपयोग न हो, कुपात्र जो इसका दुरुपयोग करें उनके हाथ ये अस्त्र न पड़ जायँ, यह सुनिश्चित करना आवश्यक था. पात्रता के लिए शारीरिक बल, तेज, धैर्य, चरित्र और शौर्यनिपुणता आवश्यक थी. इस हेतु परशुराम ने इसके लिए गुरुकुल की स्थापना की. यहाँ योग्य क्षत्रियों के साथ शिक्षण हेतु ब्राह्मणों को भी शिक्षा दी जाती थी. अयोग्य लोगों को वहाँ प्रवेश नहीं मिल पाता था. कुपात्र जैसे कर्ण – जिन्होंने छद्‌म वेश में विद्या सीखी – को उन्होंने विद्या लुप्त हो जाने का शाप भी दिया. त्रेताकालीन या द्वापर कालीन सभी रण विशारद योद्धा परशुराम के शिष्य थे. स्वयं भगवान राम को धनुर्विद्या का ज्ञान परशुराम के संबंधी विश्वामित्र से ही प्राप्त हुआ था, जिसके बल पर उन्होंने राक्षसों का उन्मूलन किया. परशुराम प्रदत्त यह विद्या व्यक्ति के साथ-साथ समाज की सुरक्षा का कारक बनी. पांडवों के प्रसिद्ध शिक्षक द्रोणाचार्य श्रीपरशुराम के ही शिष्य थे. भगवान परशुराम के दक्षिण भारत प्रवास के कारण और द्वापर के अंत में जब क्षत्रियों में अंर्तकलह बढ़ गया तो यह गुरुकुल बंद हो गया.

नि:शस्त्र निरीह व्यक्ति आक्रान्ता को आकर्षित करता है. शस्त्र धारण से उसके सम्मुख खडा व्यक्ति सावधान रहता है. परशुराम ने लोगों को प्रतिरक्षा में शस्त्र धारण करने को प्रोत्साहित किया. इससे निरर्थक अपराध बंद हो गए. (यही प्रयोग अपराध नियंत्रणा के लिए पिछली शताब्दी में अमेरिका में भी किये गए). सामान्य जन के पास आयुध देखकर अपराधियों में भी भय का संचार होता है. त्रेतायुगीन समाज में लोग जंगलों से बाहर आकर समाज के बीच रहने और सुरक्षित अनुभव करने लगे. इस कारण जो सैद्धांतिक ज्ञान जंगलों में विकसित हुआ था उसका व्यावहारिक उपयोग जनहित में कृषि, चिकित्सा, व्यापार, नौकायन, निर्माण, तकनीकी क्षेत्रों में होने लगा. वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग से समाज में विकास तथा समृद्धि आई.

आध्यात्म का अंकुश जरूरी

कोई भी एकधुरीय शासन व्यवस्था थोड़े दिनों के बाद निरंकुश हो जाती है. प्रजातंत्र में भी न्यायपालिका और कार्यपालिका में द्वंद्व चलता रहता है. यह मंथन आवश्यक है. शासकों के ऊपर आध्यात्म या नैतिकता का अंकुश नहीं होने से वे स्वार्थपरक या जनविरोधी होने में विलम्ब नहीं करते. गांधी

जी ने भी कहा था की नैतिकताहीन राजनीति विनाश का कारक होती है. नीति निर्धारण और उस के अनुसार आचरण करने के लिए शासकों को प्रेरित करना समाज के मूर्धन्य मनीषियों का कर्त्तव्य है. यह निरंकुशता और मनमानेपन के नियंत्रण हेतु अंकुश का काम करता है. ये कार्य विभिन्न समाजों में प्राय: होते रहते हैं. इस व्यवस्था का सर्वप्रथम आरम्भ श्री परशुराम ने किया. नरपति से नृप की यात्रा इसी आध्यात्मिक अंकुश की परिणति थी. अत्याचारी शासकों को दंड देना, उनका अधिकार या शासन समाप्त कर देना यह प्रजातंत्र के रूप में, में कई सदियों के बाद वैशाली तथा मगध राजतंत्रों में हुआ. वर्तमान काल में इसका पर्याय अभी तक नहीं है.

प्रकृति के संरक्षक परशुराम

अगली पीढी को उत्तरदायित्व हेतु तैयार करना भी कुशल नेतृत्व का सूचक है. अच्छे उद्यमों में अगली तीन से चार पीढ़ियों के भावी उच्च पदाधिकारियों को चुन कर जिम्मेवारी के लिए तैयार रखा जाता है. इससे नेतृत्व परिवर्तन से नीतिगत परिवर्तन की संभावना कम रहती है.

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है :

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगंकर्मकारणमुच्यते, योगारूढस्य तस्यैव शम: कारणमुच्यते (भगवद्गीता 6-3)

सिद्धि प्राप्त कर लेने के बाद मुनि या योगी को कार्य का परित्याग कर देना चाहिये. मृत्युपर्यंत कार्यशील रहने से भावी संतति निकम्मी हो जाती है. अत: योगी अगली पीढी को शिक्षित कर स्वयं कार्य का शमन करे. यह आधुनिक युग मे भी अवकाश प्राप्त कर लेने की स्थिति जैसी है. इससे योग्य उत्तराधिकारी जिम्मेवारी ग्रहण कर लेते हैं. परशुराम का परार्धाकाल इसी धारणा पर आधारित था. उन्होंने भी सक्रिय जीवन से विराम लेकर अन्य उत्तरदायित्व हस्तांतरण के लिए कार्य किया. उन्होंने दक्षिण भारत की ओर प्रयाण किया.

दक्षिण भारतीय मान्यताओं के आधार पर, त्रेता में समुद्र ने पृथ्वी को निगलना आरम्भ कर दिया था. केरल का भगवान परशुराम ने समुद्र से पुनरुद्धार (Reclammation) किया था. इस कारण केरल को परशुराम क्षेत्र भी कहते हैं (समुद्र से मिले पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर अब यह सिद्ध हो गया है कि प्रागैतिहासिक काल में केरल के अधिकाँश भाग समुद्र में विलीन हो गए थे). परशुराम ने अपने फरसे को वहाँ पर गिरा दिया था (आज भी केरल क्षेत्र देखने में परशु के फाल की भाँति दिखाई भी देता है). इसके पश्चात दक्षिणी घाटों का सरक्षण प्रारंभ हुआ जो परशु के दण्ड के समान दिखाई देता है. परशु की जहां तक पहुँच थी वहाँ तक समुद्र पीछे खिसक गया (यह क्षेत्र गोकर्ण से कन्याकुमारी तक का फैला हुआ है). समुद्र से निकली भूमि नमक से भरी होने के कारण कृषि के लिए अनुपयुक्त थी. अत: परशुराम ने नाग देव वासुकि को इसे शुद्ध करने को कहा. वासुकि के मुंह से निकली विषाग्नि से धारा शुद्ध होकर कृषि हेतु उपयोगी बन गयी. इस स्थान को नागों के संरक्षण में दे दिया गया. यह कार्य भूसंरक्षण, तथा भारतीय मानसून को नियमित करने का अनूठा भागीरथ प्रयास था जिसके कारण उत्तर भारतीय समतल मैदानों में भी मानसून वर्षा नियमित रूप से होने लगी और कृषि प्रसार संभव हो सका. भारतीय मनीषियों में अनेक ने इसी परम्परा में अपने जीवन का उत्तरार्ध समाज के हित में - व्यस्त दिनचर्या के कोलाहल से दूर - व्यतीत किया. स्वामी सत्यानन्द जी या नानाजी देशमुख आदि कुछ उदाहरण समकालीन हैं.

जन आन्दोलन के प्रणेता

परशुराम के चरित्र का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम जनहित के लिए आन्दोलन है. उनके सभी प्रयास लोगों की समस्याओ के दीर्घकालीन समाधान हेतु थे. भूमि सुधार आर्थिक सुधारों की नींव है. भूमि सुधार के कार्यक्रमों में समाज के सभी समूहों का सहयोग एक महत्वपूर्ण क्रान्ति का शंखनाद था. साधारण कृषक या मजदूर ''महिदेव'' के रूप में विभूषित हुआ.

''बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही''. (राम च. मा. बाल 271-7).

इतनी प्रतिष्ठा कृषि में संलग्न व्यक्ति को कभी दुबारा नहीं मिली. कृषक कन्या सीता को प्राप्त प्रतिष्ठा इसी अवधारणा पर आधारित थी. इसी जन प्रयास का उन्होंने केरल राज्य के समुद्र से पुनरोद्धार के रूप में किया. उस आन्दोलन में वहाँ के सभी लोग यहाँ तक कि वानरों ने सामूहिक रूप से योगदान किया. केरल का समुद्र से संरक्षण तथा भारतीय भूभाग की दक्षिणी सीमाओं के सुदृढीकरण के प्रयासों से दक्षिण में समृद्धि आयी. यद्यपि ये सारे प्रयास परशुराम से प्रेरित थे उन्होंने इसका श्रेय लेने की ओर ध्यान नहीं दिया. उस महान व्यक्ति को इसकी आवश्यकता भी नहीं थी. परशुराम ने अपनी स्तुति के स्थान पर जन समूह की प्रतिष्ठा पर ध्यान दिया. बाद में लंका विजय के प्रक्रम में, किष्किन्धा स्थित इसी

सामाजिक-राजनैतिक-सामरिक संगठन का उपयोग श्री राम ने भी किया.

उनका कार्य अधूरा है

सभी अवतार अपनी लीला समाप्त होने के बाद समेट लिए गए. भगवान परशुराम अभी तक पृथ्वी पर हैं, स्वधाम क्यों नहीं लौटे ? इसे स्पष्ट करना आवश्यक है. परशुराम ने जितने संकल्प लिए वे समाज विकास की श्रृंखला के नियामक हैं. वे सभी प्रयास निरंतर चलनेवाले हैं. शासकों पर आध्यात्म का अंकुश, शौर्य या प्रतिभा का सम्मान, सैन्य बल का निरंतर आधुनिकीकरण, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान तथा इसके दुरूपयोग पर कड़ी नजर.

प्रकृति और मानव के बीच संतुलन तथा एक सबसे महत्वपूर्ण सन्देश कि - जीवन के उत्तरार्द्धकाल में सक्रियता से दूर संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए. समाज ने जो दिया वह उसे लौटाना चाहिए. शास्त्रनुसार देव पितृ और ऋषि ऋण के रूप में इसका प्रतिदान आवश्यक है. यह सभी कार्य एक बार नहीं बल्कि पीढी दर पीढी लगातार होना चाहिए.

परशुराम ने प्रतिभा को सर्वोपरि माना. प्रतिभा और योग्यता का सम्मान आवश्यक है. पश्चिमी देशों की तकनीकी श्रेष्ठता और समृद्धि का आधार यही है. नवीन विचार प्रगति के लिए आवश्यक हैं. अगर मेधा की लगातार उपेक्षा होती रही तो फिर यह समाज की अपूरणीय क्षति होगी. ऐसा समाज अधोगामी और पतन उन्मुख हो जाता है. परशुराम ने इन्ही आदर्शों को प्रतिपादित किया और उनका अनुसरण करने हेतु अभियान चलाया. केवल एक बार ऐसा करने से यह कार्य पूरा नहीं होता है. यह काम बार बार लगातार - कभी कभी नए रूपों में - करना होता है. अतएव परशुराम को हमारे बीच रहने की बाध्यता है. बाकी सभी अवतार अपना काम पूरा होने पर लीला समेट कर विदा हो गए, पर परशुराम का संकल्प अभी बाकी है. यही कारण है कि परशुराम कालजयी हैं. समय का उनपर कोई असर नहीं होता है. उनका कार्य समाप्त होते ही सृष्टि अधोगामी तथा पतन के राह पर दौड़ पड़ेगी. बस इसी कारण परशुराम चिरंजीवी हैं. एक मनीषी जो अनंत काल पूर्व से प्रकृति मनुष्य और समाज के संरक्षण हेतु, कभी प्रत्यक्ष तो कभी परोक्ष रूप से अपने काम में संलग्न है. परशुराम का अस्तित्व शाश्वत है.

दर्शन परशुराम का

परशुराम का जीवन दर्शन व्यावहारिक है. इसमें आध्यात्म और व्यक्ति की प्रभुता का सम्मान है. उन्होंने जीवन से दूर भागने वाले लोगों का आह्वान किया कि जीवन तो मुख्य धारा में है. व्यवहारहीन शुष्क दर्शन निरर्थक होता है. समाज को स्थिर रखने के लिए आध्यात्म और आयुध दोनों का सामंजस्य आवश्यक है. विद्वानों का कर्त्तव्य समाज के ऊपर अपनी दृष्टि रखने तथा शासकों को उचित मार्गदर्शन करने का है. निरर्थक युद्ध से समाज को कोई लाभ नहीं. सशक्तीकरण से ही समाज उन्नति करता है. व्यक्ति का सम्मान उसकी प्रतिभा सेन कि आयु या वंश से की जानी चाहिए. मेधा का सम्मान समाज की उन्नति और समृद्धि का संदेशवाहक होता है. इससे स्थिरता आती है और नवीन विचारों से उत्तरोत्तर प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है. मेधा और क्षमता या कौशल के असम्मान और उपेक्षा के परिणाम ही सामाजिक अधोगति के उत्प्रेरक का काम करते हैं.

अपनी कविता 'परशुराम की प्रतीक्षा' (1960) में वीर रस के कवि श्री दिनकर ने आज के समाज की दुर्दशा और कुव्यवस्था का चित्रण किया था. सामाजिक अंतर्विरोध, मेधा की उपेक्षा और अयोग्य लोगों को अधिकार के दुष्परिणाम के बारे में राष्ट्रकवि ने लिखा है -

जब तक प्रसन्न यह अनल, सुगुण हंसते हैं,
है जहां खड्ग सब पुण्य वहीं बसते हैं,
वीरता जहां पर नहीं, पुण्य का क्षय है,
वीरता जहां पर नहीं स्वार्थ की जय है.
तलवार पुण्य की सखी धर्मपालक है,
लालच पर अंकुश कठिन लोभ सालक है,
असि छोड, भीरु बन, जहां धर्म सोता है,
पातक प्रचंडतम वहीं प्रकट होता है.
जा कहो पुण्य यदि बढ़ा नहीं शासन में,
यों आग सुलगती रही प्रजा के मन में,
तामस बढ़ता यदि गया धाकेल प्रभा को,
निर्बंध पंथ यदि मिला नहीं प्रतिभा को
रिपुनहीं यही अन्याय हमें मारेगा,
अपने घर में ही फिर स्वदेश हारेगा।

गौतम बुद्ध और उनका प्रभाव

जनक कुमार पाण्डेय

बुद्ध एक सामाजिक दार्शनिक दिशा प्रदान करने वाले विष्णु के अवतार थे। तत्कालीन समाज के एक श्रेष्ठ सुधारक के रूप में उनका योगदान अद्वितीय है। बौद्ध दर्शन और उसकी प्रासंगिकता के बाद भारतीय इतिहास की दिशा बदल गई थी।

आज भी वे एक सामाजिक क्रांति के पुरोधा के रूप में उनके अनुयायियों के बीच बहुधा स्मरण किए जाते हैं। लौकिक राजनैतिक अवधारणा के विपरीत बुद्ध का कृतित्व नई मर्यादाओं की स्थापना थी, जिसकी अपेक्षा आज भी की जा रही है।

भारतीय शास्त्रों के अनुसार बुद्ध (विष्णु के अवतार) का जन्म कीकट प्रदेश (मगध) में अंजन नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में हुआ था। श्रीमद् भागवत पुराण में कहा गया है कि गया का सम्बंध उनके साथ स्वाभाविक था। बौद्ध दर्शन के अध्ययन अध्यापन का केंद्र गया क्षेत्र ही था। लुम्बिनी से चलकर प्रचलित बुद्ध (सिद्धार्थ) भी यहीं पर आए थे, तपस्या की और ज्ञान प्राप्त किया। उनके दर्शन और विचार का प्रसार का केंद्र भी गया या राजगृह ही रहा। उनके पिरव्राजन (भ्रमण) के प्रमाण भी गया, राजगृह, वाराणसी (सारनाथ), वैशाली और कुशीनगर के ही मिलते हैं। बुद्ध कितने - गया में ही क्यों ? बुद्ध कोई व्यक्तिगत नाम नहीं है। यह एक सम्मानजनक उपाधि है, जिसका अर्थ है ज्ञानवान या जाग्रत। बुद्ध कई हुए है। एक बुद्ध तो आने वाले भी हैं। बुद्ध पूजा का समारोह 28 बुद्धों को श्रद्धांजलि देने के लिए आयोजित किया जाता है जो 'प्रबुद्ध' थे और जिन्होंने अलग अलग समय पर प्रकट होकर धर्म की शिक्षा दी थी। 28 वें बुद्ध 'मेटेय्या' या मैत्रेय हैं जिनका आर्विभाव भविष्य में होना है। इन सभी में प्रचलित तो सत्ताईसवें सिद्धार्थ ही थे। अब पहला प्रश्न यही उठता है। क्या शाक्य वंशीय शुद्धोदन- महामाया के पुत्र सिद्धार्थ (जन्म 563 BC) ही बुद्ध थे, या उनके अतिरिक्त भी बुद्ध थे? तनहणकर, मेधनकर आदि बुद्ध की श्रृंखला का तात्पर्य क्या है? और, सिद्धार्थ बुद्ध को लुम्बिनी से मगध जैसे अपवित्र गया शहर में आने की और तपस्या करने की जरूरत क्यों पड़ी। लेकिन इस दर्शन का अध्ययन अध्यापन गया में ही होता था। कुछ कारणों से भारतीय वांग्मय में मगध क्षेत्र को तो अपवित्र माना गया है। फिर, यहाँ पर ज्ञान की प्राप्ति कैसे ? यहाँ का दशर्न ग्राह्य कैसे ? नए दर्शन के साथ साथ समाज में नई व्यवस्थाएँ बनती हैं। उत्पादन शिक्षा और प्रशिक्षण के केंद्र बनते हैं। इसी के कारण नई प्रशासनिक व्यवस्था भी बनती है। बुद्ध के पूर्व की वैदिक सभ्यता कर्म और यज्ञ पर आधारित थी। अच्छे कार्य या व्यवसाय द्वारा अर्थोपार्जन तथा यज्ञ कर उसका समाज के सभी अंगों में समुचित वितरण। इसी आधार पर वर्ण व्यवस्था सक्रिय थी। कालांतर में 'दीर्घ सत्र' प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि के लिए महत्वपूर्ण हो गए। यज्ञों के लिए स्थायी शिविर या नदी के किनारे घाटों का निमार्ण शुरू हो गया जो आगे चल तीर्थस्थान बन गए। यज्ञों का स्वरूप ध्यान स्तुति या हवन से आगे आडंबरयुक्त समारोह था ही, समृद्ध वर्गों द्वारा इनमें पशु बलि की कुप्रथा भी प्रवेश कर गई। आवश्यक नहीं होने पर भी वैभव प्रदर्शन हेतु धन का अपव्यय और निरपराध पशुओं की यज्ञ में हत्या अनापेक्षित थी। बुद्ध की अहिंसा और यज्ञ विरोध का संदेश इसी बुराई के विरुद्ध था ।

यद्यपि विवादास्पद है, फिर भी यदि पाश्चात्य पुरातत्वविदों की बात मान लें तो ईसा के 1000-1500 साल पहले लोहे की खोज हो चुकी थी। लौह अयस्क और उसकी शुद्धि आज भी बिहार-झारखंड में ही होती है। लोहे का शुद्धीकरण एवं सुदृढ़ हथियार तथा औजार बनाए जा रहे थे। प्रारम्भ में इन का उपयोग अस्त्र शस्त्रों में ही होता था, पर धीरे धीरे यह तकनीक कृषि क्षेत्र में भी अपनायी जाने लगी। पुराने ताम्बे के औजारों की तुलना में स्टील के औजार, जंगल-झाड़ को जल्दी साफ करने में सहायक थे। जंगल साफ होने से खेती के लिए अतिरिक्त जगह मिल रही थी और उसकी गहरी खुदाई से अनाज की उपज भी बढ़ा रही थी। उस समय खेती के लिए पशुओं का ही प्रयोग किया जाता था। हल जोतने, सिंचाई या फिर माल ढोने के लिए भी पशु ही काम आते थे। कृषक और व्यापारी वर्ग समृद्ध हो रहा था। लोहे के खदान मगध के राज्य में ही थे। यही कारण है कि मगध ने लोहे के व्यापार से लाभ कमाया। चम्पा या भागलपुर से छोटी नौकाओं में सामान लाद कर ताम्रलीप्ति (वतर्मान तमलुक या हल्दिया) लाया जाता था जहां से यह विदेशों में जाता था। औजारों और कोयले के व्यापार से प्राप्त धन के कारण सैन्य और आर्थिक रूप से मगध, चक्रवर्ती या शक्तिशाली राज्य बन गया। धन के साथ नया दर्शन स्थायित्व लाता है।

यद्यपि तर्क की अपनी वैदिक प्रचलित प्रणाली थी, बुद्ध के अनुयायियों की सबसे बड़ी देन विवेक या बुद्धि की प्रधानता थी। यदि कोई चीज तर्कसंगत नहीं हो तो तो वह अस्वीकार्य बनी। बहुत सारी कुप्रथाएँ जो समय के साथ बोझ बन गई थीं उनका बहिष्कार समाज के लिए आश्वस्त करने वाली बात थी। कई पाखंड भी समूल नष्ट हो गए। समाज की सोच में मौलिक परिवतर्न आया, और प्रकृति के निरीक्षण से नियम बने जिनका

लाभ उठाया गया। यही दर्शन आगे चलकर आधुनिक विज्ञान के रूप में विकसीत हो गया। औषधीय पौधों की खोज से चिकित्सा के नए आयाम खुले। विज्ञान की मदद से धातुकर्म, नौकायन मंडी व्यवस्था आदि शुरू हुई। साहित्य सृजन का यदि उदाहरण लें तो अभी प्रचलित व्याकरण, पद्य रचना, रामायण, महाभारत आदि पौराणिक इतिहास, गणित या विज्ञान से सम्बंधित संकलन भी इसी युग की देन हैं। संसाधनों का समुचित दोहन भी भारतीय मानस के लिए आर्थिक रूप से शुभारम्भ थीं, साथ ही साथ अध्ययन अध्यापन के लिए भी विहारों का उपयोग भी। इस धर्म का मूल तत्व विवेचन और विश्लेषण है जो विज्ञान का मूल है। इसलिए लोगों की सोच में वैज्ञानिकता के आने से कुरीतियों और रुढ़ियों की समाप्ति आसान हो गई। बुद्ध के पहले इस ऋंखला में अधिकांश तपस्वी और ब्राह्मण लोग थे। वे मुक्त स्वभाव के थे और प्रकृति के साथ रहने के अभ्यस्त थे। इसके कारण उनकी आवश्यकताएँ निवास और आश्रम का निर्वाह सरल और लगभग नि:शुल्क था। अरण्य के जीवन में आवश्यकताएँ कम थीं, बची खुची भी थोड़े से दान या माँग लेने से पूरी हो जाती थीं। इसलिए तत्कालीन समाज में शिक्षा लगभग नि:शुल्क थी, परंतु शिक्षा के लिए, सुविधायुक्त विलास का जीवन छोड़ने की मजबूरी थी, जो समृद्ध वर्ग के लिए आकर्षक नहीं था। यही कारण था की उस समय शिक्षित लोगों की संख्या भले ही कम हो, विद्वान उपलब्ध थे और राजाओं के द्वारा सम्मानित थे। इस कमी को पाटने के लिए बुद्ध ने स्कूलों को नगरों के पास लाने का काम किया। प्राय: सभी बौद्ध विहार विशालकाय अट्टालिकाएँ थीं जो राजधानी के अगल बगल में खड़ी की गईं। जंगल के निवास की जगह इनमें सारी आधुनिक सुविधाएँ भी आ गईं। स्थायी स्कूलों के निमार्ण से शिक्षा का स्तर बढ़ा, साथ साथ उसपर व्यय भी। इसलिए राजकोष से अनुदान की अब आवश्यकता थी। बुद्ध के राजकुमार होने के कारण राजघरानों से सम्बंध अच्छे थे इसलिए यह कोई बड़ी समस्या नहीं बन पाई। परंतु अब स्थानीय ही नहीं विदेशी भी इन विहारों में आकर पढ़ने और रहने लगे। अरस्तू और उसके शिष्य पाइथोगोरस भारत में ही शिक्षित हुए। ईसा मसीह के तिब्बती बौद्ध विहारों में पढ़ने के लिए प्रमाण भी है। इसी शिक्षा प्राप्ति के चलते पश्चिम एशिया के देशों में दो हजार साल पहले सभ्यता का जागरण आया।

सत्ययुग के भरत के बहुत दिनों बाद बुद्ध के रूप में किसी क्षत्रिय द्वारा पहली बार ब्राह्मण वचर्स्व वाली इस आध्यात्मिकता प्राप्ति और नेतृत्व को चुनौती मिली। अकेले बुद्ध होते तो भी ठीक था। दान करने वाले वैश्य समुदाय में भी पुनजार्गरण हो रहा था। यही कारण बुद्ध की प्रिसिद्ध का भी था।

सिद्धार्थ का जन्म वैशाख मास की पूणर्मासी को कपिलवस्तु के लुम्बिनी में 563 ईसा पूर्व क्षत्रिय कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम शुद्धोधन तथा माता का नाम माया देवी था। इनकी माता की मृत्यु इनके जन्म के सातवें दिन ही हो गयी थी जिसके बाद इनका पालन पोषण इनकी सौतेली माता प्रजापति गौतमी ने किया। इनके पिता शाक्यगण के मुखिया थे तथा राजकुमार होने के कारण बुद्ध की परवरिश पूरे राजसी ठाठ-बाठ से हुई। 16 वर्ष की आयु में बुद्ध का विवाह यशोधरा के साथ हुआ। कुछ वर्ष पश्चात उनको पुत्र प्राप्ति हुई जिसका नाम राहुल रखा गया। कुछ वर्णनों के अनुसार सिद्धार्थ ने राज्य कार्य और शस्त्र-शास्त्र की शिक्षा अपने गुरु विश्वामित्र से ली। कालांतर में उनके कई शिक्षक बने, बाद में वे स्वयं भी अपने आप को गुरु कहते थे। शाक्य वंशीय सिद्धार्थ के घर छोड़ने के अनेक कारण बताये जाते हैं। राहुल सांकृत्यायन सम्पादित पुस्तक 'मंझिम निकाय' के राजवग्ग में मधुरिये-सुत्त बोधिराजकुमार-सुत्त 2 (2)- महासिहनद-सुत्त -बुद्ध-जीवनी (तपस्या। आलेचक-व्रत। आहार-शुद्धि।) या भीमराव अंबेडकर द्वारा रचित पुस्तक बुद्ध और उनका धम्म के अनुसार, सिद्धार्थ बचपन से ही स्वभाव से शांत और करुणामय थे। समय बीतने के साथ उनकी शिक्षा दीक्षा हुई और यशोधरा से उनका विवाह हो गया और उनके घर एक पुत्र का जन्म हुआ। शाक्यों और कोलियों के बीच रोहिणी नदी के जल को लेकर अक्सर संघर्ष होता रहता था। इन्हीं कारणों की वजह से शाक्यों के संघ ने कोलियों के विरुद्ध युद्ध का प्रस्ताव पारित किया। किन्तु सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) ने इसका विरोध किया। शाक्यों का संघ एक गणतंत्र था। गणतंत्र के नियम के अनुसार बहुमत के विरुद्ध जाने पर दण्ड का प्रावधान था। दण्ड के रूप में गौतम बुद्ध के समक्ष तीन विकल्प रखे गए। • सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) को युद्ध में भाग लेना पड़ेगा। • मृत्यु दण्ड या फिर देश छोड़कर जाना इन दोनों में से एक दण्ड को स्वीकार करना होगा। • तीसरा विकल्प था अपने परिवार के लोगों का सामाजिक बहिष्कार और उनकी संपत्ति की जब्ती। गौतम बुद्ध के लिए युद्ध में भाग लेना एक असंभव कार्य था। अपने परिवार का सामाजिक बहिष्कार भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। आखिर में गौतम बुद्ध ने देश छोड़कर जाना स्वीकार किया। उन्होंने अपने माता पिता और पत्नी यशोधरा की सहमति और अनुमति लेकर घर छोड़ दिया।

एक अन्य प्रकरण के अनुसार रोहिणी नदी के जल बंटवारे का विवाद (शाक्य व कोलिय राज्य के मध्य) जो युद्ध का रूप ले रहा था, को रोकने के लिये बुद्ध को देश छोड़ना पड़ा। परिणामस्वरूप युद्ध टल गया। कपिलवस्तु की संघ सभा मे सिद्धार्थ गौतम ने जो देशत्याग की घोषणा की थी उसका पता यशोधरा को सिद्धार्थ के महल पहुँचने से पहले ही चल गया था। महल पहुँचने के बाद यशोधरा से कैसे सभा की बाते और उनकी देशत्याग की घोषणा के बारे मे खुलासा किया जाए यह सोचकर

सिद्धार्थ स्तब्ध हो गए थे। लेकिन, यशोधरा ने ही स्तब्धता को भंग करते हुए कहा, संघसभा मे आज जो कुछ भी हुआ उसका पुरा वृतांत मुझे मिल चुका है। आपकी जगह मै होती तो मै भी कोलियों के विरुद्ध युद्ध मे सहभागी न होते हुए मै भी वही कदम उठाती जो आपने उठाया है। मै भी आपके साथ प्रवज्या का स्वीकार करती, परंतु 'राहुल' की जिम्मेदारी की वजह से मै ऐसा नही कर सकती। इस स्थिति का उपयोग उन्होंने ज्ञानाजर्न के लिए किया। सात वर्ष तक सिद्धार्थ ज्ञान की खोज में इधर-उधर भटकते रहे। फिर, वे सबसे पहले सांख्य दर्शन के आचार्य अलार कलाम (आराड) के आश्रम पहुंचे। 'लिलतिवस्तार' के अनुसार इनका आश्रम वतर्मान वैशाली में था। यही उनके प्रथम गुरु थे। अश्वघोष ने कालाम के सिद्धांतों का सांख्य दर्शन से साम्य स्थापित किया है - जो नास्तिक 'किपल' द्वारा प्रणीत और उस समय किपलवस्तु में प्रचिलत था। उनसे शिक्षा ग्रहण करने के बाद वे राजगृह आये जहां रुद्रक- रामपुत्र से शिक्षा ली। तत्पश्चात् उन्होंने उरुवेला (बोधगया) के लिए प्रस्थान किया, जहाँ उन्हें कौडिन्य सहित 5 साधक मिले। 6 वर्ष के प्रयास तथा तपस्या के बाद 35 वर्ष की आयु में वैशाख पूर्णिमा की रात पीपल वृक्ष के नीचे निरंजना (पुनपुन) नदी के तट पर सिद्धार्थ को ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने अपना नाम 'तथागत' रख लिया। सिद्धार्थ ने 'मध्यम' मार्ग अपनाने पर जोर दिया जिसकी संस्तुति गीता में की गई है।

ज्ञान प्राप्ति के बाद सिद्धार्थ अपने गोत्र के आधार पर- 'गौतम बुद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुए। गौतम बुद्ध बिंबिसार के समकालीन थे। कुछ लोगों का मानना है कि बिंबिसार की पत्नी रानी क्षमा (खेमा) बुद्ध की शिष्य और बौद्ध धर्म शिक्षका थीं।

गीता के कमर्योग के सिद्धांतों के वे अनुयायी थे। बुद्ध अनुसार दुनिया में दुख और कष्ट कर्म के कारण होते हैं, न कि, किसी ईश्वर की इच्छा से। उन्होंने लोगों को दुखों से मुक्ति पाने का मार्ग दिखाया, जिसके लिए किसी भगवान की पूजा या प्रार्थना की आवश्यकता नहीं थी। बुद्ध ने स्वयं को एक मार्गदर्शक के रूप में प्रस्तुत किया, जो दूसरों को ज्ञान और मोक्ष के रास्ते पर ले जाता है। उनके सिद्धांतों में सांख्य दर्शन की प्रचुरता है।

यद्यपि हिंदू मत के अनुसार बुद्ध को विष्णु का अवतार भी मानते हैं, लेकिन बौद्ध धर्म में यह स्वीकार नहीं किया जाता है। बौद्ध धर्म के अनुसार, बुद्ध एक मानसिक अवस्था है जिसे कोई भी प्राप्त कर सकता है। बुद्ध ने मनुस्मृति के अनुरूप कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था का सदा अनुमोदन किया। बुद्ध ईश्वर को मानते थे। बुद्ध आस्तिक थे। बुद्ध ने स्वयं को कभी भी नास्तिक (अनीश्वरवादी) नहीं कहा। इसका प्रमाण हमें मिलता है धम्मपद में, जो कि बौद्ध साहित्य का सर्वोत्कृष्ट लोकप्रिय ग्रन्थ है। इसमें महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेशों में परमात्मा की ओर स्पष्ट संकेत किया है। धम्मपद के जरावग्गो 8-9 में बुद्ध ने कहा है- अनेक जाति संसारं, सन्धाविस्सं अिनन्वस। गृहकारकं गवेस्संतो दुक्खा जाति पुनप्पुनं। अथार्त - ग्रह का निमार्ण करने वाले (ईश्वर) की खोज में मैं अनेक जन्मों तक संसार में भटकता रहा। बार-बार का जन्म दुखमय हुआ। गह कारक दिट्ठोऽसि पुन गेहं न काहिस। सब्बा ते फासुका भग्गा गहकू टं विसंखितं। विसंखितं चित्तं तण्हिर्नं खयमज्झागा।। - हे ग्रह कारक (शरीर बनानेवाले)! मैंने तुझे देख लिया, अब तू फिर से घर नहीं बना सकेगा। तेरी सभी किड़याँ टूट गयी, ग्रह का शिखर गिर गया। चित्त संस्कार रिहत हो गया, तृष्णाओं का क्षय हो गया। इस श्लोक में मुक्ति अथवा मोक्ष की अवस्था का वणर्न किया गया है। हम जब तक मोक्ष की अवस्था में नहीं पहुँच जाते तब तक जन्म मरण का चक्र चलता रहता है। इससे हमें पता चलता है कि बुद्ध परलोक और पुर्नजन्म में विश्वास करते थे और यह संकेत मिलता है कि बुद्ध आस्तिक थे।

सारनाथ में अपने पहले उपदेश में बुद्ध ने कहा था- अहं भिक्खवे! तथागत सम्मासम्बुद्धो उदूहथ भिक्खवे। सोतं अमतं अधिगतम् अहमनुसासामि अहं धर्म्म देसेमि। - हे भिक्षुओं। अब मैं बुद्ध हो गया हूँ। मैंने अमृत की प्राप्ति कर ली है अब मैं धर्म का उपदेश करता हूँ। अमृत शब्द वेदों और उपनिषदों में ईश्वर के लिए प्रयोग किया गया है। इससे भी हमें यह संकेत मिलता है कि बुद्ध आस्तिक थे ईश्वर को मानते थे।

अत्ताहि अत्तनो नथो को हि नाथो परो सिया अत्तनां व सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं।। (धम्मपद श्लोक 160 अत्तवग्गो 4) में ईश्वर की सत्ता को महात्मा बुद्ध स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए कहते हैं कि आत्मा ही आत्मा का नाम है और कौन उस (परमात्मा) से बड़ा नाथ व स्वामी हो सकता है। अच्छी प्रकार आत्मा का दमन कर लेने से दुर्लभ नाथ (परमात्मा) की प्राप्ति होती है। 'नाथं लभति दुल्लभं' यह शब्द अत्यन्त स्पष्टरूप से दुर्लभ नाथ (परमात्मा) का निर्देश करते हैं।

7वीं शताब्दी में बौद्ध यात्री ह्वेनसांग ने हेमिस गोम्पा (लेह के दक्षिण-पूर्व दिशा में) शहर से 45 किमी की दूरी स्थित मठ का वर्णन किया है। इस मठ के ऊपरी भाग में देवी तारा का मंदिर है। किंवदंती है कि देवी तारा की आराधना भगवान बुद्ध करते थे। बौद्ध धर्म की व्रजयान शाखा में इस देवी की पूजा का खास महत्व है। प्रतिवर्ष चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को महातारा जयंती मनाई जाती है जो दस महाविद्या में से एक शिक्त का उग्र और आक्रामक स्वरूप हैं।

सती माता ने ही पार्वती के रूप में दूसरा जन्म लिया था। माता सती राजा दक्ष की पुत्री थीं। राजा दक्ष की और भी पुत्रियां थीं जिसमें से एक का नाम तारा हैं। इस मान्यता से तारा माता सती की बहन हैं। तारा को तांत्रिकों की देवी माना जाता है। तांत्रिक साधना करने वाले माता तारा के भक्त होते हैं। अधिकांश तंत्र मंत्र की प्रचुरता हिंदू समाज में बुद्ध के बाद ही आई। बुद्ध को

ईश्वर पर विश्वास था। मनुष्य की अंतरात्मा में ईश्वर का वास होता है। जैसा उपिनषदों में कहा गया है- अंर्तदृष्टि मिलनता को दूर कर उसे जागृत कर देती है। वेदान्त भी इसी मूल प्रश्न पर आते हैं कि 'आप कौन हैं'। बुद्ध की शिक्षाओं का लक्ष्य किसी देवता की पूजा करने या उसकी आज्ञाओं का पालन करने की जगह एक नैतिक जीवन जीने, दुख के कारणों को समझने और मुक्ति प्राप्त करने पर केंद्रित था। 'अष्टाध्यायी के 'अिस्त नास्ति दिष्टं मितं' इस सुप्रिसद्ध सूत्र के अनुसार जो परलोक और पुर्नजन्म आदि के अस्तित्व को स्वीकार करता है वह आस्तिक है और जो इन्हें नहीं मानता वह नास्तिक कहाता है। महात्मा बुद्ध परलोक और पुर्नजन्म को मानते थे इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। इसलिये उन्हें सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण देना अनावश्यक है। प्रथम प्रमाण के रूप में धम्मपद के जरावग्गो श्लोक (संख्या 153) 'अनेक जाति संसारं, सन्धाविस्सं अिनिन्वस। गृहकारकं गवेस्संतो दुक्खा जाति पुनप्पुनं।।' में महात्मा बुद्ध ने कहा है कि अनेक जन्मों तक मैं संसार में लगातार भटकता रहा। गृह निमार्ण करनेवाले की खोज में। बार-बार जन्म दु:खमय हुआ। बुद्ध को अधिक से अधिक एक संशयवादी के रूप में समझा जा सकता है, जो अटकलों या अंधविश्वास के विरुद्ध है। आत्मा- परमात्मा एवं स्वर्ग-नरक की अवधारणा से दूर उन्होंने मानव मूल्यों को सर्वोपरि रखा।

बुद्ध स्वयं कहते हैं--''ब्रह्मभूतो अतितुलो मारसेन प्पमद्दनो। सब्बा मित्ते बसीकत्वा, मोदामि अकुतोभयो।।''

अर्थात्--मैं अब ब्रह्म पद को प्राप्त हुआ हूं, मेरी तुलना अब किसी से नहीं है, मैंने मार (कामदेव) की सेना को मर्दित कर दिया है। अब मैं काम, क्रोध आदि सब अन्त: शत्रुओं को वश में करके निर्भय होकर मस्त हो रहा हूं। विद्वान लेखक पं. धर्मदेव इस पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि यह एक ही वचन भगवान बुद्ध की आस्तिकता और ब्रह्मपद प्राप्ति के लिये पर्याप्त है। जरा-सी समझने की बात है कि जो स्वयं ब्रह्मविहार करता हो, ब्रह्मचारी हो, ब्रह्मभूत हो (यह सम्भव ही नहीं है कि) वह ब्रह्म को न माने? वास्तव में बौद्ध साहित्य में निर्वाण, ब्रह्म, अमृतपद, परमसुख, उत्तम अर्थ, अनाष्यात, दुलर्भनाथा आदि शब्द एकार्थवाचक हैं। बुद्ध ने स्वयं कहा है--जो नास्तिक हैं उन्हें विनाशोन्मुख समझो। एक बात है- बुद्ध आस्तिक तो थे ही, आर्य भी थे। आर्य शब्द से उन्हें बड़ा प्रेम था। चार आर्य सत्य, आर्य, अष्टांगिक मार्ग और आर्यश्रावक तो बहुत प्रसिद्ध हैं।

उनके अनुसार आर्य शब्द गुणवाची है। आर्य शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ। इसलिये श्रेष्ठता, उच्चता और उत्तमता की भावना के लिये 'आर्य शब्द' बुद्ध ने प्रयोग किया है। इसीलिये बुद्ध-पुरी में आस्तिकता और अहिंसकता की श्रेष्ठ भावना को पुष्ट करने के लिये 'आर्य बौद्ध' शब्द का प्रचार किया जाता है। बुद्ध ने भी धम्मपद में स्वयं कहा है--'न तेन अरियो होति, येन पाणानि हिंसति। अहिंसा सबपाणानं, अरियोति पवुच्चति।।' (धम्मपद श्लोक 270, धम्मटठ्वग्गो 15) अर्थात प्राणियों का हनन कर कोई आर्य नहीं होता, सभी प्राणियों की हिंसा न करने से उसे आर्य कहा जाता है। (सन्तसुधा कानपुर बुद्ध जयन्ती अंक मई 1950 पृष्ठ 10-11)।

एक बार बुद्ध के पास मौलुंकपुत्त नाम का एक दार्शनिक आया। उसने बुद्ध से पूछा कि ''क्या ईश्वर है'' ? बुद्ध ने जवाब दिया, 'क्या वास्तव में तुम्हें जानने की इच्छा है कि ईश्वर है या नहीं या फिर तुम ऐसे ही पूछ रहे हो?' मौलुंकपुत्त ने आश्चर्य से देखते हुए कहा कि नहीं मुझे सचमुच जानना है, मैं हजारों मील की यात्रा कर इस प्रश्न का उत्तर जानने आया हूं। मौलुंकपुत्त को लगा कि बुद्ध उसे गंभीरता से नहीं ले रहे तो उसने गुस्से में कहा कि मैं इस सवाल के जवाब के लिए सब कुछ दांव पर लगाने को तैयार हूं, हांलाकि मैं ऐसा सोचकर नहीं आया था। मुझे चुनौती मत दें। मैंने कई विद्वानों से इस प्रश्न का जवाब मांगा लेकिन कभी मिला नहीं। बुद्ध ने कहा, मैं किसी को चुनौती नहीं देता, ये मेरा कार्य नहीं है। अगर तुम्हें अपना उत्तर चाहिए तो दो वर्षों के लिए चुपचाप मेरे पास बैठो। इन दो सालों में तुम्हें कुछ नहीं बोलना होगा, कोई प्रश्न नहीं करना है। यदि किसी तरह की जिज्ञासा भी हो तो उसका उत्तर नहीं मांगना। जब तुम्हें दो साल मौन रखे हुए हो जाएं तो उसके बाद मैं तुमसे पूछुंगा तब तक यदि तुम्हारी जिज्ञासा ऐसी ही बनी रही तो अपना सवाल पूछना। बुद्ध की यह बात सुनकर मौलुंकपुत्त थोड़ा घबराया उसे लगा कि जान देना तो आसान है लेकिन 2 साल मौन बैठना मुश्किल है। परंतु उसने बुद्ध की इस शर्त को मंजूर कर लिया। उसने जैसे ही बुद्ध की इस शर्त को माना दूसरे वृक्ष के पास बैठा एक साधु जोर-जोर से हंसने लगा। मौलुंकपुत्त ने फौरन पूछा, तुम क्यों हंस रहे हो? साधु ने कहा जैसे तू आज फंसा है वैसे मैं भी फंस चुका हूं। मैं भी कुछ पूछने आया लेकिन इन्होंने कहा 2 साल चुप रहो फिर जो पूछना हो पूछ लेना लेकिन 2 साल बाद मेरे पास कुछ पूछने को बचा ही नहीं। इसलिए तुझे चेतावनी दे रहा हूं कि जो कुछ पूछना है अभी पूछ ले। बुद्ध ने इन दोनों की बातें सुनकर कहा, देखो मैं 2 साल बाद भी अपने वादे पर रहूंगा, तुम जो पूछोगे मैं उसका उत्तर दूंगा अगर नहीं पूछोगे तब भी तुम्हें याद दिलाऊंगा कि कुछ पूछना है तुम्हें ? देखते-देखते 2 साल बीत गए। समय गुजरने के बाद बुद्ध ने कहा, मौलुंकपुत्त उठ, तुझे जो पूछना है पूछ ले।

मौलुंकपुत्त हंसने लगा और बोला, उस साधु ने सही कहा था, दो साल तक मेरी चुप्पी में इतनी गहराई आ गई, ऐसा बोध जमा हो गया, ध्यान लगाया, कि विचार धीरे-धीरे खो गए। वतर्मान में डुबकी लगाई और फिर जिस ज्ञान की प्राप्ति हुई उसके लिए मैं आपका धन्यवाद करना चाहता हूं। अब मेरे मन में कोई सवाल नहीं है।

प्रज्ञा-समिति का संरक्षक मंडल

1.	श्री राजनाथ मिश्र	उपाध्यक्ष	9835216656

प्रज्ञा-समिति की कार्यकारी परिषद् के पदाधिकारी एवं सदस्य

1.	श्री शिववंश पाण्डेय	अध्यक्ष	9430253666
2.	श्री पंडितजी पाण्डेय	कार्यकारी अध्यक्ष	9431494603
3.	डॉ० मनोज कुमार	उपाध्यक्ष	9334040894
4.	श्री रास बिहारी पाण्डेय	कोषाध्यक्ष	9431447533
5.	श्री जनक कुमार पाण्डेय	महासचिव	9431201931
6.	श्रीमती शकुन्तला मिश्र	शिक्षा एवं संस्कृति सचिव	7979837449
7.	श्री कमलाकान्त तिवारी	संगठन-सचिव	9931220384
8.	श्री ध्रुव नारायण पाठक	सदस्य	9162073236
9.	श्री शंभू नाथ पाण्डेय	सदस्य	9430066676
10.	श्री बशिष्ठ तिवारी	सदस्य	9431264914
11.	श्री नरेन्द्र कुमार तिवारी	सदस्य	9470031450
12.	श्री अजय कुमार मिश्र	सदस्य	9470448812
13.	श्री मुकेश ओझा	सदस्य	9430588296
14.	श्री केदारनाथ पाण्डेय	सदस्य	9831018702
15.	श्री शैलेन्द्र कुमार	सदस्य	9835087408
16.	श्री बंशीधर उपाध्याय	सदस्य	9473384131
17.	श्री शंभुनाथ पाण्डेय	सदस्य	9934816666

विशेष आमंत्रित कार्यकारी परिषद्-सदस्य

1.	श्री राजेन्द्र तिवारी	9835038882
2.	डॉ० वेंकटेश तिवारी	9334769237
3.	डॉ० अंशु पाठक	9308528926
4.	श्री चन्द्रशेखर पाठक	9097537175
5.	श्री भक्तिशरण शास्त्री	9334335287
6.	श्री सरोज चौबे	9835063244
7.	श्री हृषिकेश पाठक	9939195050
8.	श्री संजय कुमार पाठक	9204107114
9.	श्री के० सी० त्रिपाठी	9934033249
10.	डॉ० अरूण कुमार मिश्र	9430906590